Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मुख-पत्रिका

चैत्र २००२ तथा वैशाख २००२

RT 6595

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन

प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मेलन-पत्रिका : चैत्र २००२ तथा वैशाख २००२

सम्पादक—श्री रामचंद्र टंडन

विषय-सूची

सामान्य भाषा विज्ञान

लेखक—डा० बाबूराम सक्सेना एम० ए० डी० लिट्

भाषा-विज्ञान संबंधी यह पुस्तक सामान्य श्रेणी के पाठक और भाषा-विज्ञान के प्रारंभिक विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर लिखी गई है। पर ऐसा होने पर भी उक्त विषय का कोई भी महत्त्वपूर्ण तथ्य छूटने नहीं पाया है, और विशेषज्ञ भी इस पुस्तक से काफी लाभ उठा सकेंगे—ऐसी हमारी धारणा है। ऐसे जटिल और नीरस (तथापि अवश्य जानने योग्य) विषय को लेखक ने ऐसा सुगम, सुबोध—बल्कि रोचक बना दिया है कि आश्चर्य होता है। लेखक अपने विषय के विशेषज्ञ हैं। हमें पूरा विश्वास है कि हिन्दी में यह पुस्तक अपने ढंग की एक ही है। पुस्तक के तीन परिशिष्ट में क्रम से लिपि का इतिहास, ग्रन्थसूची तथा समाधान, और पारिभाषिक शब्द-सूची सन्निविष्ट है। मूल्य ६)

साहित्य मंत्री—हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग ३३, संख्या ६-७ : चैत्र २००२ तथा बैशाख २००३

सम्मेलन-पत्रिका

राष्ट्रभाषा हिन्दी

[श्री अमरनाथ झा]

हिन्दी-जगत् में जनपदीय भाषाओं के सम्बन्ध में बहुधा चर्चा हुआ करती है। भारतवर्ष एक बहुत बड़ा देश है और इसमें अनेक भाषाएँ सदा से प्रचलित हैं। इतनी भाषाओं का रहना और इन सबका हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानना महत्त्व की बात है। कई भाषाए् तो संस्कृत से अपनी तुलना करती हैं। कई में उच्च कोटि का साहित्य है। सैकड़ों वर्ष से इनमें साहित्य की रचना होती आई है।-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की नीति प्रान्तीय भाषाओं के विरुद्ध नहीं है। परन्तु विवाद यों खड़ा हुआ है कि हिन्दी की कुछ सन्निकट भाषाएँ हैं जिनसे स्वातंत्र्य की आशङ्का है। पूछा जाता है कि क्या बुन्देलखंडी, अवधी, राजस्थानी, ब्रजभाषा हिन्दी से भिन्न हैं और क्या इनके प्रोत्साहन से हिन्दी की क्षति नहीं होगी? इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर यह है कि प्रत्येक व्यक्ति का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह अपनी मातृभाषा का अध्ययन करे और इसी में उसकी प्रारम्भिक शिक्षा हो। मातृभाषा प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम हो, इस विचार से सभी शिक्षक सहमत होंगे। आजकल की शिक्षा-प्रणाली में इस सुधार की सबसे बड़ी आवश्यकता है। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने पर किस भाषा द्वारा शिक्षण हो, यह प्रश्न दूसरा है। मेरी सम्मति यह है कि हिन्दी प्रान्तों में हिन्दी—राष्ट्रभाषा के रूप में—शिक्षा का माध्यम हो। प्रारम्भिक शिक्षा मातृभाषा द्वारा पा लेने पर विद्यार्थी को राष्ट्रभाषा सीखने अथवा राष्ट्रभाषा द्वारा सीखने में कठिनता नहीं होगी। इस पद्धति से मातृभाषाओं की रक्षा के साथ-साथ राष्ट्रभाषा का भी हित है। किसी प्रान्त के निवासी के मन में यह आशंका उत्पन्न न होगी कि उसकी मातृभाषा का लोप होनेवाला है। और इनमें से कई भाषाएँ तो ऐसी हैं जिनमें अच्छा साहित्य भी है। हिन्दी का जो रूप अब प्रचलित है वह कुछ थोड़े भाग को छोड़कर कहीं के निवासियों की मातृभाषा नहीं है। परन्तु साहित्यिक और राजनीतिक क्षेत्र में यह इतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार में है, सत्तर वर्ष से इसका इतना प्रचार हो गया है और भारतवर्ष की भाषाओं में इसकी इतनी प्रतिष्ठा हो गई है कि इसको सहज ही राष्ट्रभाषा का पद मिल गया है। राष्ट्रभाषा में ही दूसरी और उच्च श्रेणी की शिक्षा होनी चाहिए, परन्तु साथ ही अन्य भाषाओं में भी साहित्य-रचना होती रहे यह वांछनीय है। उदाहरण-रूप में, व्रज-साहित्य इतना सुन्दर है और व्रजभाषा इतनी मधुर है कि इस साहित्य का भविष्य में अस्तित्व ही न रहे इसको कौन साहित्य-प्रेमी अङ्गीकार करेगा? हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कर्त्तव्य है कि इस साहित्य और इसी भाँति और साहित्य की भी उन्नति में सचेष्ट रहे।

राष्ट्रभाषा हिन्दी का स्वरूप वही होगा जिसमें समस्त भारतवर्ष के निवासी सुगमता से अपने विचारों को व्यक्त कर सकेंगे। इस देश की मुख्य भाषाओं में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है और संस्कृतमयी हिन्दी को ही सब प्रान्तों के रहनेवाले अपनायेंगे। रही समस्या उर्दू की। यह समस्या तो केवल संयुक्तप्रान्त और पंजाब की समस्या है और यहाँ भी शहरों तक ही सीमित है। देहातों में तो सबकी बोली एक ही है। यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि जहाँ तक सम्भव हो प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति हिन्दी और उर्दू दोनों पढ़े। उर्दू का साहित्य अच्छा है, उर्दू भाषा अच्छी है। उर्दू का ज्ञान होना उपकारक सिद्ध होगा। उर्दू एक बहुसंख्यक समाज की भाषा है। हिन्दी और उर्दू के ज्ञान से दोनों भाषाओं की वृद्धि हो सकती है। परन्तु यद्यपि प्रारम्भिक काल में उर्दू इस देश की यथार्थ भाषा थी और उर्दू के आदि कवियों ने इस देश की संस्कृति को सुरक्षित करने का प्रयास किया था, तथापि खेद के साथ कहना पड़ता है कि कालक्रम से उर्दू केवल फारसी का एक अङ्ग हो गई और उर्दू साहित्य में भारतीय जीवन और भारतीय संस्कृति की कहीं झलक नहीं आती है। फिर भी उर्दू को भी उन्नति करने का अधिकार है और इसकी गति को रोकना अनुचित है। हम इसकी समृद्धि चाहते हैं, हम चाहते हैं कि यह भी फूले-फले। उर्दू से हमें द्वेष नहीं है। किसी साहित्य-रसिक को किसी भाषा अथवा साहित्य से द्वेष नहीं रह सकता।

रही बात 'हिन्दुस्तानी' की। यह कौन भाषा है, कहाँ की है, किसकी है? इसका साहित्य कहाँ है? इस भाषा में कौन लिखता है? अर्थशास्त्र, राजनीति, विज्ञान, दर्शन इत्यादि विषयों पर ग्रन्थ किस भाषा में लिखे जाते हैं? हिन्दुस्तानी के गढ़ने का प्रयोजन क्या है? प्रचलित भाषाओं को विकृत करना कौन-सी बुद्धिमत्ता है? क्या हिन्दुस्तानी में भावुकता आ सकती है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या इसमें गूढ़ विषयों को व्यक्त करने की क्षमता है ? हिन्दुस्तानी के जो थोड़े से उदाहरण हम देख सके हैं उसको तो भद्दी उर्दू कहने में हमको संकोच नहीं है। उर्दू के वाक्य में हिन्दी के एक-दो शब्द रख देना भाषाशैली के साथ परिहास करना है। हिन्दुस्तानी आन्दोलन से हिन्दी-संसार तो असन्तुष्ट है ही, उर्दू जगत् भी प्रसन्न नहीं है। उचित यही है कि हिन्दी और उर्दू दोनों की गति अविरुद्ध रहे।

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का कर्त्तव्य स्पष्ट है—हिन्दी-भाषा का प्रचार और साहित्य की अभिवृद्धि करना। अन्य भाषाओं के प्रति उसको स्नेह है, सम्मान है। किसी से उसका विरोध नहीं है, किसी की उन्नति के मार्ग में बाधा नहीं डालता है। हिन्दी का प्रचार अब तक अच्छा हुआ है, परन्तु और अधिक यत्न अपेक्षित है। समाचारपत्रों और मासिक-पत्रों को सहायता और मिलनी चाहिए। इनकी ग्राहक-संख्या पर्याप्त नहीं है। हिन्दी पढ़नेवालों को चाहिए कि हिन्दी-पत्रों के ग्राहक बनें। साथ ही पत्रों के संचालकों का कर्त्तव्य है कि वे अपने पत्रों को इस योग्य बनावें कि किसी और भाषा के पत्रों के पढ़ने की आवश्यकता न रहे। हिन्दी के बहुत कम दैनिक-पत्र ऐसे हैं जिनमें समस्त संसार के समाचार उसी दिन छपते हों जिस दिन अँगरेजी पत्रों में उनका प्रकाशन होता है। समाचारपत्रों की भाषा में भी संशोधन होना चाहिए। सरल से सरल भाषा का इनमें प्रयोग होना चाहिए, जिसे सर्वसाधारण समझ सके, जिससे जनता प्रभावित हो सके। अँगरेजी शब्दों और वाक्यों का अविकल अनुवाद बहुधा हास्यास्पद होता है। उदाहरणार्थ, इस वाक्य को लीजिए—"दिल्ली के ग्वालों ने असेम्बली-भवन के सामने प्रदर्शन किया।" अथवा "कामायिनी—एक अध्ययन।" "उस दिन राष्ट्रपति ने बताया"—इन शब्दों से एक लेख आरम्भ किया गया है, किस दिन ? इस प्रकार का अनुवाद अनावश्यक है। फिर, पत्रों में पढ़ने की सामग्री और होनी चाहिए। रुचि भिन्न है और अनेक रुचियों की तुष्टि पर ध्यान देना उचित है। सम्पादकों को यह भी चाहिए कि अश्लील विज्ञापनों को प्रकाशित न करें। और जहाँ तक सम्भव हो, संवाददाता ऐसे नियुक्त करें जो विश्वसनीय हों और यथाशक्ति पक्षपात-रहित हों। हिन्दी-प्रचार का एक प्रधान अंग यह भी है कि प्रत्येक विषय पर प्रत्येक श्रेणी के विद्यार्थियों के उपयुक्त ग्रन्थ लिखे जायें। पुस्तकों के प्रणेताओं को उचित पारिश्रमिक मिलना चाहिए। अब समय आ गया है कि मौलिक पुस्तकों की रचना हो, अनुवादों से काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं चल सकता। ग्रन्थों के प्रकाशित हो जाने पर उच्च कोटि की शिक्षा भी हिन्दी द्वारा दी जा सकेगी। इसका ध्यान रहे कि उर्दू में भी इस प्रान्त में शिक्षा दी जायगी और एक ही विषय का अध्यापन दो भाषाओं में, भिन्न-भिन्न कक्षाओं में, करना पड़ेगा। सम्भव है कुछ विद्यार्थियों के लिए कुछ दिनों तक अँगरेजी का भी सहारा लेना पड़े। इन सबसे व्यय बढ़ जाने की सम्भावना है, परन्तु देशीय भाषा में शिक्षा से इतना लाभ होगा कि यह व्यय खलना नहीं चाहिए। विश्वविद्यालयों और अन्य साहित्यिक संस्थाओं को आपस में मिलकर पारिभाषिक शब्दावली प्रकाशित करनी चाहिए और ऐसे विषयों पर ग्रन्थ लिखवाने चाहिए जिनका उपयोग शिक्षा-विभाग कर सके।

बहुधा देखा जाता है कि हम यदि अँगरेज़ से मिलते हैं तो अँगरेजी में उससे बातें करते हैं, रावलपिंडी के निवासी से मिलते हैं तो उर्दू में बातचीत करते हैं; परन्तु बंगाल, महाराष्ट्र अथवा गुजरात प्रान्त के रहनेवालों से बंगाली, मराठी अथवा गुजराती में बात नहीं करते हैं। अँगरेज हमें 'गुड मार्निङ्ग' कहता है, उर्दू वाले 'सलाम वालेकुम' अथवा "आदाबअर्ज़" कहते हैं, परन्तु हम इन्हें 'नमस्कार' वा 'नमस्ते' कहते हिचकते हैं। हम "पंडित साहब" कहे जाते हैं, पर हमें "मौलवी जी" कहते संकोच होता है। हमें अपनी भाषा के शब्दों का प्रयोग करते हुए आनन्द और गर्व होना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो, आपस की बातचीत हमें शुद्ध हिन्दी में करनी चाहिए। जिस प्रकार की खिचड़ी बोली का हमें अभ्यास पड़ गया है उसे छोड़ना चाहिए। अभी कुछ दिनों से फ्रान्स की एक महिला प्रयाग में हिन्दी के अध्ययन के लिए आई हुई हैं। वह लड़कियों के छात्रावास में भारतीय लड़कियों के साथ रहती है। हमारी लड़कियाँ जब एक दूसरे से बात करती हैं तो बहुत से अनावश्यक अँगरेजी शब्द व्यवहार में लाती हैं। इससे इस फ्रेंच महिला को आश्चर्य होता है और उसका प्रभाव इतना अच्छा पड़ा है कि अब लड़कियाँ शुद्ध भाषा बोलने का यत्न करने लगी हैं।

साहित्य के विषय में मैं केवल इतना निवेदन करूँगा कि लेखक पर किसी प्रकार का कृत्रिम नियंत्रण अनुचित और हानिकारक है। उच्च कोटि की कला मानव के हृदय का वाह्यरूप है। और किसी के हृदय पर किसका अधिकार है? कला मनुष्य की भावना से उत्पन्न होती है। भावना को वश में कौन ला सकता है? कविता में चित्त का उत्साह, उमंग, वेदना, आनन्द, विषाद सन्निहित रहता है, स्वप्नों की झलक मिलती है, भावों की विलक्षणता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, विचारों की विशालता है—इनको किसी 'वाद' में जकड़ देना भयावह है। क्षुद्र नदी की धारा तो रोकी जा सकती है, सागर पर आधिपत्य कैसा?

कुछ वर्ष पहिले मैंने 'सुहृद संघ' के अधिवेशन में ग्राम्यगीतों के सम्बन्ध में यह कहा था—"इन सरल पदों में देश की यथार्थ दशा वर्णित है, यहाँ की संस्कृति इनमें संरक्षित है। सभ्यता तो बाह्य आडम्बर है; कल तुर्कों की थी, आज अँगरेजों की है। भारतीयता हमारे गाँव के रहनेवालों में है, जो शहरों के क्षणभंगुर आभूषणों से अपने स्वाभाविक रूप को छिपा नहीं चुके हैं, जिनमें युगों से वेदना सहन करने की शक्ति है; जो सुख-दुख में, हर्ष-विषाद में, जगत्स्रष्टा को भूले नहीं हैं, जो वर्षा के आगमन से प्रसन्न होते हैं, जो खेतों में, जाड़े-गर्मी में, प्रकृतिदेवी के निकट अपना समय बिताते हैं। इन गानों में हम मनुष्य के जीवन के प्रत्येक दृश्य को देखते हैं। कन्या के ससुराल चले जाने पर माता के करुण स्वर सुनते हैं, पुत्र के जन्म पर माता-पिता के आनन्द की ध्वनि पाते हैं, खेतों के बह जाने पर हताश किसान के क्रन्दन, ब्याह के अवसर पर बधाई के गान, गृहिणी के विरह की व्यथा, सन्तान की असामयिक मृत्यु पर मूक वेदना—अर्थात् मानवीय जीवन की नैसर्गिक कविता का रसास्वादन करते हैं। गजलों और सिनेमा के गानों का इतना प्रभाव बढ़ रहा है कि बहुत शीघ्र ग्राम्यगीतों के लोप हो जाने की आशंका है। इस साहित्यिक धन को नष्ट न होने देना चाहिए।" इन प्रान्तों में, व्रज, अवध, बुन्देलखंड में, हमारे इस साहित्य का बहुत बड़ा भाण्डार अब भी है और आशा है कि इसका महत्त्व सम्मेलन स्वीकार करेगा।

इधर कुछ दिनों से हमें यह आदेश मिलने लगा है कि प्रत्येक विद्यार्थी को दो लिपियाँ सीखना आवश्यक होना चाहिए—हिन्दी लिपि और उर्दू-लिपि। हिन्दी लिपि और उर्दू लिपि कोई लिपि नहीं है। नागरी लिपि और फारसी लिपि हैं। देश की और प्रधान लिपियाँ ये हैं—बंगला, गुजराती, गुरुमुखी, तामिल, तेलगू, कन्नड, मलयलम। इनमें देवनागरी की ही प्रधानता है। फिर यदि नागरी के साथ कोई और लिपि भी सीख सकें तो अच्छा अवश्य है। परन्तु हमारी लिपि वैज्ञानिक दृष्टि से इतनी शुद्ध और व्यावहारिक दृष्टि से इतनी सरल है कि इसका त्याग हमारे लिए अनावश्यक, अहितकर और असम्भव है। प्रत्येक प्रान्त में नागरी और फारसी दोनों लिपियों को अनिवार्य बनाना, बच्चे पर बहुत बड़ा बोझ डालना है। कुछ विद्वानों का मत है कि रोमन लिपि का ही प्रचार होना चाहिए। मैं इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहमत नहीं हूँ। रोमन में इतनी त्रुटियाँ हैं कि हम अपनी भाषा को इस लिपि में लिखकर अपने शब्दों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकेंगे। देवनागरी की विशिष्टता यह है कि जैसी यह लिखी जाती है वैसा ही इसका उच्चारण होता है। यह विशेषता न रोमन में है और न फ़ारसी में।

उच्च कोटि के साहित्य की रचना कठिन और परिश्रमसाध्य है। हम यदि चाहते हैं कि हमारे साहित्य का स्थान विश्वसाहित्य में ऊँचा हो तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम इसके लिए यथासाध्य परिश्रम करें। आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि के लिए इस प्रकार की शिक्षा-पद्धति बताई है—छन्दोबद्ध-पद्य की रचना का अभ्यास, काव्यग्रन्थों का अनुशीलन, समस्यापूर्ति, कवियों का सहवास, सज्जनमैत्री, नाटकों का अभिनय देखना, संगीत का ज्ञान, लोकाचार का ज्ञान, आख्यायिका और इतिहास का अनुशीलन, सुन्दर चित्रों का निरीक्षण, वीरों के युद्ध का निरीक्षण, जनता के वार्तालाप को ध्यान से सुनना, श्मशानों और जंगलों में घूमना, तपस्वियों की सेवा, एकान्तवास, स्निग्ध भोजन, रात्रिशेष में जागना, प्रतिभा और स्मरणशक्ति का उद्बोधन, जन्तुओं के स्वभाव का परिचय, पर्वत, समुद्र, नदी का ज्ञान, पराधीनता से बचना, विद्याभवनों में जाना, अपनी उन्नति की चिन्ता न करना, आत्मप्रशंसा न करना, किस समय और किन श्रोताओं के सामने कैसी कविता पढ़ी जाय इसका ज्ञान, नये भावों और विचारों के लिए प्रयत्न, ऐसी रचना करना जो सुगम हो। इस विशद पद्धति की आवश्यकता साहित्य के प्रत्येक अंग में है। इस प्रकार से शिक्षित, ऐसे ध्येय को सामने रखने वाला साहित्यकार अपनी रचना को उच्च श्रेणी तक पहुँचा सकता है, यदि उसमें प्रतिभा है। देवताओं की भाँति लेखक भी सदा युवा रहता है। उसमें तेज और उत्साह रहता है, आशा रहती है और तरङ्ग की गति रहती है। ऐसे साहित्यकार हममें हैं और रहेंगे—हिन्दी-साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है :—

रे मन साहसी साहस राख सुसाहस सौं सब जेर फिरैंगे।
त्यौं पदमाकर या सुख में दुःख त्यौं दुःख में सुख फेर फिरैंगे ॥*

---

* शिकोहाबाद प्रान्तीय सम्मेलन में अध्यक्ष पद से दिए गए भाषण का सारांश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी और हिन्दुस्तानी

[श्री सम्पूर्णानन्द]

हिन्दी और उसके सेवकों को अनेक संकटों का सामना करना पड़ा है। राजाश्रय भाषा की उन्नति और उसके प्रसार के मार्ग को प्रशस्त बना देता है। अनिछन्नपि लोग उसे पढ़ते हैं और उसमें कुछ साहित्य की रचना हो जाती है। हिन्दी इस प्रश्रय से बराबर वंचित रही है, फिर भी उसने उन्नति की है। उसके साहित्य गगन के नक्षत्र विश्व साहित्य के ज्योति:पुंजों में परिगणित होते हैं। संस्कृत को छोड़कर आज भी किसी भी भारतीय भाषा का वाङ्मय विस्तार या मौलिकता में हिन्दी के आगे नहीं जाता। इसका एक मात्र कारण यह है कि शासक चाहे जो हो और उसकी नीति चाहे जैसी हो, हिन्दी, भारतीय जनता के एक बहुत बड़े भाग की अपनी भाषा है। हिन्दी लेखकों की प्रतिभा को भारतीय संस्कृति की आत्मा निरन्तर स्फूर्ति देती रहती है, उनकी कृतियों में करोड़ों भारतियों की आशाओं, आशंकाओं, आकांक्षाओं, एवं इच्छा-विधानों की अभिव्यक्ति मिलती है।

भाषा शून्य में नहीं रह सकती, वह भावों के अनुरूप ही होती है। शब्दों के अभिधार्थ, कोष में दिये अर्थ, कुछ भी हों, परन्तु सैकड़ों वर्षों का प्रयोग उनको एक विशेष अर्थ प्रदान कर देता है। यह ध्वनितार्थ ही शब्द का व्यक्तित्व है इसलिये कोष में समानार्थक होते हुये भी स्थान विशेष में शब्द विशेष ही रक्खा जा सकता है। वहाँ दूसरा शब्द रख देने से कुछ बुरा-सा लगता है। इसीलिये हम हिन्दी के लिये आग्रह करते हैं। हमारा यह कदापि तात्पर्य नहीं है कि हिन्दी संस्कृत बन जाय। दुरूह संस्कृत शब्दों का हठात् प्रयोग, समासान्त पदों की भरमार, भाषा को कृत्रिम बना देती है। गद्य हो या पद्य हो हिन्दी हिन्दी रहनी चाहिये। हम संस्कृत से तत्सम शब्द लेते हैं और भविष्य में भी लेगें। एक तो संस्कृत का भंडार हमारी पैतृक सम्पत्ति है; दूसरे संस्कृत से लिये गये शब्द अहिन्दी भाषी प्रान्तों में भी अधिकतर सुगमता से समझे जा सकते हैं। पर इनको भी अपनाते समय हम हिन्दी की वेषभूषा से सज्जित करते हैं। इनका संस्कृत के व्याकरण से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाता तोड़ देना होता है। यह बात नहीं है कि हम संस्कृत ही से शब्द लेते हों, भारत में द्रविड़ जातियाँ रहती हैं, इसलाम धर्म के माननेवाले भी कई सौ वर्षों से बसे हुये हैं। और यद्यपि उनमें से अधिकतम भारतीयों के ही वंशज हैं फिर भी उनके जीवन पर अरब, ईरान, तुर्किस्तान की संस्कृतियों का प्रभाव पड़ा। आज तो हमारे बीच में यूरोपियन भाषाओं के बोलनेवाले भी हैं, और पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव हमारे जीवन पर प्रत्यक्ष पड़ रहा है। परिणाम वही हुआ है, जिसका होना स्वाभाविक था। हमारी भाषा में देशज और संस्कृत के तद्भव शब्द भी हैं और संस्कृत के तत्सम शब्द भी; बहुत से भावों को व्यक्त करने के लिये इन तत्सम शब्दों का प्रयोग अनिवार्य है। इनके साथ-साथ जो ध्वनियां लगी हैं, वह अन्यत्र नहीं मिलतीं। परन्तु इनके साथी तामिल, अरबी, फारसी, तुर्की, अंगरेजी, पुर्तगाली, और फ्रान्सीसी शब्द भी हैं। वह भी सर्वथा हमारे हैं। उनके निकल जाने से भी हमारी भाषा हतप्रभ हो जावेगी। आज भारतीय संस्कृति वैदिककाल की आर्य संस्कृति मात्र नहीं है। उसमें बाहर से आई हुई भी कई धारायें मिल गई हैं। इस पुट ने उसको अधिक सुन्दर सार्वभौम और पुष्ट बना दिया है। उसके अनुकूल ही हमारी भाषा है। मैं इस बात को नहीं समझ पाता कि कोई भी व्यक्ति जिसको भारतीय संस्कृति से प्रेम होगा इस भाषा को कैसे अंगीकार न करेगा? बंगला गुजराती पश्तो या तमिल भी अंशतः भारतीयता को अभिव्यंजित करती हैं परन्तु ऐतिहासिक कारणों ने हिन्दी को ही भारत की सार्वदेशिक भाषा होने का गौरव प्रदान किया है। पटना से लेकर दिल्ली और हरिद्वार से उज्जैनी तक के प्रदेश में रामायणकाल से लेकर मुगल साम्राज्य के सूर्यास्त तक भारतीय संस्कृति का विकास हुआ। यहीं बड़े बड़े चक्रवर्ती राजों और साम्राज्यों का उदय हुआ। देश के कोने-कोने से खींच कर प्रतिभाशाली व्यक्ति यहाँ आये, यहां से विद्वान् और शासक सारे देश में फैले, इस लिये यहां की भाषा स्वतः राष्ट्रभाषा बन गई।

हम इसी भाषा के पुजारी हैं। यों तो स्वतंत्र होने पर देश को अधिकार होगा कि चाहे जिस भाषा को राजभाषा बनाए। परन्तु हमको पूरी आशा है कि यह स्थान मध्यदेश की इसी भाषा को प्राप्त होगा। हम इसके लिए वर्षों से प्रयत्न भी कर रहे हैं।

यह भाषा कभी केवल भाषा के नाम से पुकारी जाती थी। आज इसे हम हिन्दी कहते हैं। हम से कहा जाता है कि राष्ट्रभाषा का नाम हिन्दुस्तानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो । हम—कम से कम मेरे जैसे बहुत-से व्यक्ति इस बात को मान लेने के लिये तैयार हैं । परन्तु इतने ही से काम नहीं चलता । प्रश्न भाषा के स्वरूप का है । नाम तो गौण है । जो लोग हिन्दुस्तानी नाम को चलाना चाहते हैं उनमें कुछ ने आज तक अपनी नीति स्पष्ट नहीं की । उनका कहना है कि हमको सरल सुबोध भाषा का प्रयोग करना चाहिये । यह बात बिलकुल ठीक है । जहाँ "खाना खाया" कहने से काम चलता हो ? वहाँ "भोजन ग्रहण किया" या "बनावल मा दगर फर्माया" कहना मूर्खता का प्रमाण देना है । परन्तु हमको ऐसे अर्थों के लिये भी शब्द चाहिये जिनका साधारण जनता के जीवन का बोलचाल में कोई स्थान नहीं है । "इन्टर नेशनल" "फाइ-नेन्सल" "कलचर" आदि के लिये क्या बोलें ? जब तक इस सम्बन्ध में कोई सिद्धान्त निश्चित न होजाय तब तक हिन्दुस्तानी का कोष किस आधार पर बने ? एक व्यक्ति कहेगा शब्द संस्कृत से लिये जाँय । दूसरा अरबी से लेना चाहेगा । एक दूसरे की बोली को कठिन और दुर्बोध कहेंगे । ऐसे भी लोग हैं जो हिन्दुस्तानी नाम से उस शैली की ओर संकेत करते हैं जिस को उर्दू कहते हैं । संस्कृत के तत्सम शब्दों की जगह अर्बी फारसी विशेषतः अरबी के तत्सम शब्द अपने विदेशी व्याकरण से सजा कर रख दिये जायें । देशज शब्दों की जगह भी यथाशक्य अरबी शब्दों को दे दिया जाय । बस हिन्दी उर्दू हो जायगी । हम को इस से द्वेष नहीं, यदि कुछ लोगों को ऐसा प्रतीत होता है कि उनके भावों की अभिव्यक्ति इस के द्वारा पूर्णतया हो जाती है । यदि कुछ लेखक ऐसा समझते हैं कि वह अपने विचारों को इसके द्वारा उत्तर भारत के नगरों में रहनेवाले थोड़े-से लोगों में ही नहीं वरन् देश की जनता में सर्वत्र फैला सकते हैं तो मुझे कुछ नहीं कहना है । किन्तु इनके पढ़ने-पढ़ाने और फैलाने का पूरा अवसर मिलना चाहिये । उनके काम में बाधा डालने के स्थान में मैं उनकी भी सहायता करने को तैयार हूँ । परन्तु मेरा ऐसा विश्वास है कि इसको चाहे जिस नाम से पुकारो जनता के हृदय तक नहीं पहुँच सकती । इसलिये कि इन शब्दों की ध्वनियाँ भारतीय आत्मा के लिये अपरिचित हैं और उनका स्वर करोड़ों भारतीयों के अन्तर्नाद से नहीं मिलता । थोड़े-से लोगों को उसमें रस मिलता है, थोड़े-से लोगों को तो शेक्सपियर, मिल्टन और स्पेन्सर आदि की भाषा में भी रस मिलता है । पर इसका यह अर्थ तो नहीं हुआ कि अँगरेजी – वह शैली हमारी राष्ट्र-भाषा या राजभाषा के लिये उपयुक्त होगी । हम को भाषा के प्रश्न पर

२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठण्डे दिल से विचार करना है। यह हिन्दू-मुसलमान का साम्प्रदायिक प्रश्न नहीं है। हिन्दी और उर्दू दोनों शैलियों से काम लेनेवालों में हिन्दू और मुसलमान दोनों रहे हैं। देश को स्वतंत्र होना है। स्वतंत्र भारत में हिन्दू और मुसलमान दोनों को रहना है। भले ही उपासना करते समय एक का मुख पूर्व और दूसरे का मुख पश्चिम की तरफ हो, एक वेद पढ़े और दूसरा कुरान की आयत। परन्तु दैनिक जीवन में एक को दूसरे से बराबर काम पड़ता है। संगीत, नृत्य कला, चित्रकला, स्थापत्य के क्षेत्र में दोनों एक जगह मिलते हैं। एक ही प्राकृतिक वातावरण में दोनों पलते हैं। ऐसी दशा में वह किस प्रकार की भाषा होगी जो सब के दुःख-सुख, सबकी लाल-साओं और अरमानों को व्यक्त कर सके। जिसके द्वारा शासक, शिक्षक लेखक, प्रचारक और पत्रकार सबके पास पहुँच सके, यह सब के सोचने की बात है। आग्रह से समस्यायें सुलझा नहीं करतीं।

मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार इस सम्बन्ध में निष्पक्ष विचार करने का प्रयत्न किया है। यह मेरा दुर्भाग्य है कि कुछ लोगों को मेरी बातें तर्कहीन प्रतीत होती हैं और उनमें साम्प्रदायिकता की गंध आती है। मैं उर्दू नाम तो स्वीकार नहीं कर सकता, परन्तु हिन्दी नाम छोड़ने को तैयार हूँ, राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी कहलाये इसमें मुझे विरोध नहीं है। परन्तु उसके स्वरूप के सम्बन्ध में मेरा मत स्पष्ट है। मुझे प्रचलित अरबी-फारसी से आये हुये शब्दों से कोई चिढ़ नहीं है। हमारी भाषा जीविति है उसमें आगे चल-कर भी विदेशी शब्द आवेंगे। परन्तु जब तक वह अपने पुराने व्याकरण का मोह नहीं छोड़ते तब तक हमारे नहीं हो सकते। दूसरी मुख्य बात यह है कि जहाँ साधारण बोलचाल के शब्दों से काम नहीं चलता वहाँ स्वदेशी अर्थात् संस्कृत से निकले हुये शब्दों को लेना होगा।

जिस देश में करोड़ों व्यक्ति बसते हों वहाँ वेषभूषा के साथ-साथ भाषा में भी थोड़ा-सा वैषम्य होगा ही। किसी के मुँह से या कलम से संस्कृत के, किसी के अरबी के शब्द अधिक निकलेंगे। यदि बनावटी ढंग से ऐसा नहीं किया जाता तो इसमें कोई आपत्ति नहीं है। एक ही भाषा में कई समानार्थक शब्दों का होना दूषण नहीं वरन् भूषण है। जो लोग किसी के मुँह से दो चार अपरिचित संस्कृत या अरबी के शब्दों को सुनकर टोंकने लगते हैं, यह हिन्दुस्तानी नहीं है, हम इसको समझ नहीं सकते? वह अपनी मूर्खता का परिचय देते हैं, और देश के साथ शत्रुता करते हैं। हँसी तो इस बात पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आती है कि इन लोगों को अँगरेजी से कोई शिकायत नहीं। जब हम को एक ही देश में रहना है तो हम को एक दूसरे के साथ अधिक सहिष्णुता का व्यवहार रखना चाहिये।[1]

तेलुगू के महान् कवि पोतना

[श्री दंडमूडि वेंकट कृष्णाराव, साहित्यरत्न]

सच्चे कवि स्वयं नहीं उत्पन्न होते, विश्व की किसी महान् आकांक्षा तथा उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त उनका प्रादुर्भाव होता है। विश्व में व्याकुलता या तपन तभी उत्पन्न होती है जब दुराचार का प्रकोप प्रबल होता है। उस प्रकोप का दमन करने के लिये विश्व की व्याकुलता या तपस्या के परिणाम स्वरूप किसी महाकवि का उदय होता है।

कोई कवि उत्पन्न दुराचार को दूर करता है तो कोई दुराचार को उत्पन्न नहीं होने देता। विश्व की व्याकुलता सागर की कंपन है। वह कंपन विश्वसागर की एक छोर में सकारण उत्पन्न होती है और उस पार पहुँच जाती है, किन्तु अपनी उत्पत्ति के कारण को छिपाये हुए। इसीलिये एक ही समय में भिन्न-भिन्न देशों में किसी एक ही सिद्धि की साधना के लिए महात्मा कवि उत्पन्न होते हैं। इसी रहस्य को लेकर कुछ ही काल में कहीं से चैतन्य महाप्रभु उत्पन्न होते हैं तो कहीं से तुलसी, सूर और कबीर। प्रस्तुत निबन्ध के वर्णनीय महाकवि पोतना का भी लगभग उसी समय आन्ध्र प्रान्त में उदय हुआ था।

भक्त पोतनामात्य निजाम राष्ट्र के अन्तर्गत एकशिला नगर के निवासी थे। इनके पिता का नाम केशन मन्त्री और माता का लक्कमांब था। ये जन्मजात पाँडित्य संपन्न थे, अर्थात् इन्होंने किसी गुरु से शिक्षा-दीक्षा नहीं पाई थी। केवल श्रीराम की कृपा से कविता-शक्ति इन्हें उपलब्ध हुई थी। योगी चिदानन्द की कृपा से प्राप्त तारक मन्त्र के जपने से इन्हें कविता-शक्ति अनायास ही प्राप्त हुई थी। अपने भागवत नामक ग्रन्थ के एक गद्यांश में

---

[1] शिकोहाबाद प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर किए गए भाषण का सारांश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त विषय का इन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया है।

वे कभी किसी राजा के आश्रित न रहे और न उनको किसी राजा महाराजा का आश्रित बनकर उसका गुणगान कर धन, वैभव एवं यश पाने की इच्छा ही थी। इसलिए उन्होंने अपने से पूर्ववर्ती व समकालीन अन्य कवियों के सदृश अपनी कविता को धन व यश के लोभ में पड़कर किसी राजा को समर्पित नहीं किया। आधिभौतिक लालसाओं के प्रति उनकी अनुरक्ति नहीं थी। उन्होंने सांसारिक सुखों को त्यागकर, दरबारों को तिलांजलि देकर अपनी समस्त रचनाओं को अपने उपास्य देव श्रीराम को ही समर्पित किया है।

वे अमीर नहीं थे। संसार को त्यागकर संन्यास भी ग्रहण नहीं किया था, फिर भी किसी राजा के आश्रय में न रहकर अपनी पैतृक संपत्ति, जो थोड़ी-सी जमीन के रूप में मिली थी, पर निर्भर रहकर अपनी गृहस्थी में संतुष्ट रहे। कितनी ही गरीबी क्यों न सतावे, कैसी भी आपत्तियों का क्यों न सामना करना पड़े, फिर भी अपने आत्मगौरव की रक्षा करते हुए जो अपने सिद्धान्त पर अविचलित रहते हैं, ऐसे ही स्तुत्य मनस्वी महान् पुरुषों में से हमारे चरितनायक पोतना भी थे।

वे अनुपम कविरत्न होते हुए भी एक सामान्य कृषक थे। प्रतिभा सम्पन्न होते हुए भी अत्यन्त विनम्र, सरल तथा शान्त स्वभाववाले थे। वे इतने दरिद्र थे कि एक समय की रोटियाँ भी मयस्सर न थीं, फिर भी राजा महाराजा तक उनकी उदारता तथा दानशीलता देखकर दंग रह जाते थे। योगी होते हुए भी वे एक आदर्श गृहस्थ एवं अपनी साधना में सर्वदा निरत रहनेवाले थे। भगवान् श्रीराम के अनन्य भक्त थे। सदाचार के तो वे मूर्ति थे। गोस्वामी जी की भाँति भक्ति के अनन्य उपासक तथा प्रचारक थे। भगवान् की सर्वलीलामय परम पुनीत चरित्र भागवत की रचना कर वे अजर तथा अमर हो गये।

भक्ति रसोद्दीपक, बहुविध वर्णन समालंकृत तथा नवरस भाव० भरित इस भागवत की जो महिमा आंध्र देश में है, उसका उल्लेख करना हमारी लेखनी की शक्ति से बाहर है। तेलुगू साहित्य में यह ग्रन्थरत्न जितना सर्वप्रिय है उतना अन्य कोई ग्रन्थ नहीं। केवल अक्षर ज्ञान रखनेवालों से लेकर उच्चशिक्षा प्राप्त लोगों तक—सब कहीं लोग इसे बड़े आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं, भक्ति भाव से उसे पढ़ते हैं और प्रेम पूर्वक उसकी पूजा करते हैं। गाँव के बाजारों तथा मंदिरों में उसका पाठ होता है, जिसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनने के लिये सहस्रों नर-नारी एकत्र होते हैं। उसकी रुक्मिणी-कल्याण, गजेन्द्र-मोक्ष, दशमस्कन्ध आदि कथाएँ बालक-बालिकाओं को विशेष रूप से पढ़ाई जाती हैं। सब कोई उसे पढ़ते तथा समझते हैं। उसे पढ़कर मुमुक्षु जन मोक्ष, भक्त जन भक्ति तथा सहृदय जन ब्रह्मानन्द सहोदरत्व का अनुभव करते हैं। 'वीधिपुराणों' में अर्थात् कथावाचक ग्रन्थों में तुलसी रामायण के सदृश सर्वत्र इसका आदर है। तुलसी रामायण का जितना आदर उत्तर भारत में है, उतना ही आदर आन्ध्र भूमि में इनके रचित भागवत का है।

ऐसे महान् भव्य ग्रन्थ भागवत के रचयिता महाकवि भक्त शिरोमणि पोतनामात्य यद्यपि आज इस संसार में नहीं हैं, उनको लोकान्तर्गत हुए पाँच सदियाँ बीत चुकी हैं, फिर भी उनकी यशोमूर्ति हरेक आन्ध्र के मन मन्दिर में आज भी विराजमान है। उनकी मधुर स्मृति, उनके भव्य संदेश, उनका आदर्श चरित्र, उनकी अनन्य भक्ति, आन्ध्र भूमि के अणु-अणु में व्याप्त है और व्याप्त रहेगा। यदि ऐसे महात्मा का प्रादुर्भाव तेलुगू भाषा के संकुचित क्षेत्र में न होकर कहीं अन्यत्र हुआ होता तो ये अवश्य विश्वव्यापी यश के अधिकारी हुए होते। महाकवि पोतना ने अपनी अदम्य कर्मण्यता का सहारा लेकर, पृथ्वी में हल जोतकर स्वर्ग में फसल काटी थी, एवं अपनी पावन यशोविभूति का वितरण सारे आन्ध्र प्रान्त को किया था। ऐसे भक्तशिरोमणि एवं रस सिद्ध कवीश्वर को पाकर सारा आन्ध्र देश अभिमान तथा गर्व करता है और करता रहेगा।

इन महानुभाव की जीवनी के संबन्ध में अनेक विचित्र कथाएँ कही जाती हैं। वे सब यथार्थ हों अथवा न हों, किन्तु सरस अवश्य हैं। अतः उनमें से कुछ नीचे दी जा रही हैं, क्योंकि किसी कविता का यथातथ्य मर्म समझने के लिये रचयिता की जीवनी का रहस्य जानना बहुत आवश्यक होता है।

विना बैल के हल जोतना, श्रीरामचन्द्र का दर्शन होना, उन्हीं से भागवत रचने की आज्ञा मिलना, सरस्वती का विलाप करना, जगजननी सीता द्वारा सौ आदमियों का आतिथ्य संपन्न करना, भागवत छीन लेने के इरादे से के आई हुई कर्णाट नरेश की सेना का श्री हरि के श्वेतवराह रूप द्वारा नष्ट-भ्रष्ट करना, इत्यादि अलौकिक घटनाओं से पोतना की जीवनी गुथी-हुई है।

इस अविश्वास के युग में चामत्कारिक घटनाओं को लोग गप्प समझते हैं। परन्तु स्वाभाविकता या अस्वाभाविकता का निर्णय पाठक की अपनी ही मर्यादित बुद्धि पर अवलंबित है। ऐसी सैकड़ों बातें आज वैज्ञानिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथ्य और स्वाभाविक बनती जा रही हैं जो पचास बरस पहले नितान्त अस्वाभाविक और असंभव समझी गयी थीं। अतः हमें इस बात से सरोकार नहीं कि वे सत्य हैं अथवा मिथ्या। इनकी चर्चा केवल इसलिये कर रहा हूँ कि ये गाथायें पोतना की जीवनी में एक अंश बन चुकी हैं।

बाल्यावस्था में जब पोतना गौओं को चराते हुए जंगलों तथा पहाड़ों में घूमते थे तब उन्हें वहाँ चिदानन्द नामक एक योगी मिले थे, जिन्होंने बालक पोतना को श्रीराम मन्त्र का उपदेश देकर उसका अनुष्टान क्रम भी विशेष रूप से बतलाया था। कुछ दिनों के बाद एक चन्द्रग्रहण के दिन गोदावरी में स्नान करके जब वे ध्यान में मग्न थे तब भगवान् श्रीरामचन्द्र ने उन्हें दर्शन देकर भागवत की रचना करके अपने नाम पर समर्पित करने की आज्ञा दी थी, तब पोतना ने कहा था कि—

"पलिकेडिदि भागवतमट पलिकिंचेडि वाडु रामभद्रुंडट नेपलिकिन भवहर मगुनट पलिकेद वेरोंडु गाथ पलुकग नेला ?"

अर्थात् 'मेरे कहने का विषय भागवत अर्थात भगवत्-गुणानुवर्णन है और मुझे ऐसा करने की प्रेरणा देनेवाले श्रीरामभद्र हैं। मुझसे कहा गया है कि यदि मैं ऐसा करूँगा तो संसार के मायाजाल से छूटकर मुक्ति पाऊँगा। अतः अन्य कथाओं को छोड़कर मैं उसी पुण्य-कथा को गाने की क्रिया में प्रवृत्त होता हूँ।' अपनी रचना के विषय में महात्मा तुलसीदास जी भी कुछ इसी प्रकार की बातें करते हैं।

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा भाषा निबन्धमतिमंजुलमातनोति।

योगी चिदानन्द के द्वारा इन्हें 'तारक मन्त्र' का उपदेश मिला था। अनन्तर श्रीराम के दर्शन हुए थे और भागवत रचने की आज्ञा भी मिली थी। अतः यह स्पष्ट है कि इनके इष्टदेव श्रीराम ही थे। ऐसी दशा में यह प्रश्न उठ सकता है कि कुछ स्थानों में श्रीराम के प्रति तथा कुछ स्थानों में श्रीकृष्ण के प्रति पद्यों की रचना इन्होंने क्यों की है ? जैसे—

"श्रीमद्भक्त-चकोरक सोमविवेकाभिरामा, सुरविनुतगुणस्तोमविरलंकृता सुररामा। श्रीमंत सीयराघवरामा !"

"श्रीकरकरुणासागरप्रकटलक्ष्मीचरित्रभव्यचरित्रलोकातीतगुणाश्रय गोकुल विस्तारनंद गोपकुमारा।"

इसका उत्तर यही है कि वे श्रीराम को विष्णु मानते हैं। श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों नाम विष्णु के हैं। अतः श्रीराम को विष्णु का रूप ही समझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर उक्त प्रकार से वर्णन किया गया है। अब दूसरा प्रश्न यह है कि राम के अनन्य भक्त होते हुए भी रामायण को छोड़कर भागवत की रचना इन्होंने क्यों की? उसका समाधान यह है कि उनसे पहले ही कवि भास्कर रामायण की रचना कर चुके थे, इसलिए "चदिरनु भास्करुडु लेडा रामायणमुनु बड्ल के किंपना" कहकर उन्होंने अपने मन का दुःख व्यक्त किया और चर्वित चर्वण को उचित न समझ रामायण को छोड़ इष्टदेव की आज्ञा के अनुसार भागवत की रचना की। सब पुराणों की रचना तेलुगू में पहले ही हो चुकी थीं। केवल भागवत ही बाकी रह गया था। इसे वे अपना अहोभाग्य समझ कर कहते हैं—

"ओनरन नन्नय तिक्कनादि कवुलीयुर्वि पुराणावलुल तेनुगुन सेयुचु; मत्पुराकृत् शुभाधिक्यंबु दानेट्टिदा तेनुगुन जेयरु मुन्नु भागवतमुन दीनिन देनिगिचि ना जननंबुन् सफलंबुचे सेद पुनर्जन्मंबु लेकुंडमन्।"

अर्थात् नन्नय तिक्कनादि कवियों ने सब पुराणों की रचना करके मेरे पूर्व जन्मकृत पुण्याधिक्य के कारण भागवत की रचना नहीं की। अतः अब इसकी रचना करके मैं अपने जन्म को सफल करूँगा और अपने पुनुर्जन्म को मिटा दूँगा।

ग्रन्थ समर्पण के संबन्ध में पोतना का यह विचार था—

"इम्मनु जेश्वराधमुल किचि पुरंबुलु, वाहनंबुलन्
सोम्मुलु कोन्नि पुच्चुकोन्नि सोक्कि शरीरमुवासि कालुचे
सम्मेट वाटुलन् बडक सम्मति श्रीहरि किचियेषे
नी बम्मेर पोतराजोकड्डु भागवंबु जगद्धितंबुगन्।"

अर्थात् अपनी कृति देकर इन राजाओं से गौरवान्वित होकर इस नश्वर संसार की माया में फँसे रहने की अपेक्षा मैंने अपनी इच्छा से ही जगत् के हित के लिये इस भागवत को श्रीरामचन्द्र के नाम पर समर्पित किया है। प्राकृत जन गुणगान के संबन्ध में महात्मा तुलसीदास का भी यही विचार था।

कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना।
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना॥

कहा जाता है कि पोतना को सर्वज्ञ सिंग भूपाल के दरबार में अपने बहनोई श्रीनाथ की प्रेरणा से एक बार जाना पड़ा। राजा इन की कविता पर मुग्ध हुआ तथा अपनी वारांगना भोगिनी के नाम पर—दंडक—स्तुति श्लोक—रचने की प्रार्थना की। विद्वान् होते हुए भी इनको "दंडक"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की रचना करनी ही पड़ी। घर लौट आने पर उन्हें बहुत पश्चात्ताप हुआ तथा भविष्य में कभी राज दरबारों में न जाने की प्रतिज्ञा कर ली। उपर्युक्त पद उसी अवसर पर रचा गया था।

पोतना की गरीबी देखकर उनके बहनोई रावसिंग भूपाल के दरबारी कवि शृंगार नैषध के रचयिता "कविसार्वभौम" श्रीनाथ जी हमेशा दुःखित रहा करते थे। ये महाशय लौकिक सुखों के इच्छुक, राजाश्रित, भोगी तथा सुसंपन्न थे। ये पोतना को भी दौलतमंद बनाने की इच्छा से राजाश्रित रहने की प्रेरणा उन्हें हमेशा देते रहे, किन्तु पोतना अपने सिद्धान्त से कभी विचलित होनेवाले नहीं थे? श्रीनाथ के यह पूछने पर कि—

"कम्मनि ग्रंन्थं बोक्कटि शिम्मुग ने नृपति कैन,
कृति इच्चिनयो गोम्मनि शिय्यरे वेयिन्नूलु,
इम्महि दुन्नग नेल यिहि महात्मुल् ?"

अर्थात् यदि आपकी कृति किसी राजा के नाम समर्पित की जायगी तो वे सहर्ष अतुलित संपत्ति प्रदान करेंगे। ऐसी दशा में आप जैसे महात्माओं को हल जोतने की क्या आवश्यकता है? इसके उत्तर में पोतना ने कहा—

"बाल रसाल साल नव पल्लव कोमल
काव्य कन्यकन् कूळल किचि अप्पड्डु
गूड्ड भुजिंचुट केटे श्यत्कवुल् हालिकु लैन नेमि
गहनान्तर सीमल कंदमूल गौद्दालिकु लैन नेमि
निजदार सुपोदर पोषणार्थमै ?"

अर्थात् बाल रसाल एवं साल के नव पल्लव की भाँति कोमल काव्य रूपी अपनी कन्या को विलासियों के हाथों में बेंचकर उस द्रव्य से अपने परिवार को पालने की अपेक्षा यदि सत्कवि घने जंगल के कंदमूलादि को खाकर अपना पेट पाले तो क्या हानि होगी? अथवा हल जोतनेवाले किसान बनने में उसे कौन-सी आपत्ति होगी?

कहा जाता है कि श्रीनाथ जी अपनी धाक जमाने की इच्छा से सौ आदमियों के साथ एक बार पोतना के घर आये। भक्तों की दुर्दशा भगवान से कैसे देखी जा सकती है? भूगर्भ में अवस्थित को आहार देकर उसकी रक्षा करने वाले चराचर के स्वामी दयासागर श्रीराम के रहते हुए भक्तों को किस बात की कमी होगी? श्रीसीता माई की कृपा से कहा जाता है कि पोतना के घर उस दिन सौ आदमियों का आतिथ्य पूरा हो गया। भक्त की आपत्ति टल गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्नाट के नरेश को कृति दिलाने की इच्छा से आये हुए श्रीनाथ जी के एक बार विफलमनोरथ होकर चले जाने पर पोतना दुविधा में पड़े। वे सोचने लगे कि श्रीनाथ जी ने मेरी भागवत रचने की बात अपने राजा से कही होगी और उस नरेश ने ही उन्हें मेरे यहाँ भेजा होगा। अब मेरी नामजूरी पर न जाने वे क्रोधित होकर क्या कर बैठेंगे? यदि राजा स्वयं ही यहाँ आ जाँय तो मैं कौन-सा उत्तर उन्हें दूँगा। न जाने कौन-सी आपत्ति आ जाय—इस संकट का निवारण कैसे होगा? इस प्रकार कुछ भी समझ में न आने पर वे भगवान् का ध्यान करने लगे। पोतना इसी उधेड़-बुन में पड़े सोचते ही थे कि उनकी आँखें झंप गयीं और उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा मानो सरस्वती सामने खड़ी रो रही हैं। तब पोतना ने यह पद पढ़कर उस देवी को सांत्वना दी—

"काटुक कंटि नीरु चनुकट्टु पयंबड नेल येडचेदो;
कैटभराजमर्दनुनि गादलि कोडला योमदांबा।
यो हाटकगर्भुराणि तिनु आकटि किन् गोनिपोई:
या कर्णाट किरात नीचकुल कम्मतिशुद्धिग नम्मु भारती!"

अर्थात् हे हाटकगर्भुराणि! (हिरण्यगर्भ ब्रह्मा की रानी अर्थात् सरस्वती!) हे अंबे! हे भारती! तुम क्यों रो रही हो? तुम आंसू क्यों बहा रही हो? मैं अपने पेट के लिये तुम्हें उन कर्णाट के नरेशों को नहीं सौपूंगा। मेरी यह बात सत्य मानो।

इस प्रकार पोतना की नामंजूरी पर उनसे राजा साहब सचमुच नाराज हो गये और पोतना को पकड़वा कर मंगवाने के लिए एक भारी सेना भी उन्होंने भेजी। किन्तु भक्तवत्सल भगवान के होते हुए पोतना को क्या भय था?

"जो पै कृपा रघुपति कृपाल की वैर और के कहा सरै,
होय न बांको भगत को कोउ कोटि उपाय करौ।"

कहा जाता है कि उस समय के रचना के अनुरूप श्रीहरि ने श्वेत वराह के रूप में प्रत्यक्ष होकर उस सारी सेना को मार भगाया। कहने लगें तो पोतना के विषय में कथायें अनन्त हैं। अतः एक और छोटी कथा लिखकर जीवनी समाप्त कर रहा हूँ।

गजेन्द्र की प्राण संकट की दशा में पाहि-पाहि का शब्द सुनने पर भगवान् विष्णु ने—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सिरिकिन् चेप्पडु शंख चक्रयुगमुन् चेदोह संधिंप डेपरिवारंबुनु जीर हम्रगपतिं मन्निप डाकर्णिकांतर धम्मिल्लमु जक्कनोत्तडु विवादप्रोद्धित श्री कुचोपरिचेलांचल मैनवीडडु गजप्राणावनोत्साहियै।"

न तो लक्ष्मी से कहा और न हाथ में शंख चक्र आदि को ही लिया। कुचोपरि चेलांचल को भी विना छोड़े, खगपति आदि को विना बुलाये ही अपने भक्त की रक्षा की आतुरता में भगवान् दौड़ पड़े। मानव मनोवृत्तियों का कैसा स्वाभाविक सुन्दर चित्रण है? कवि की पूर्ण भावुकता इसमें है कि वह प्रत्येक मानव की स्थिति में अपने को डालकर उसके अनुरूप भाव का अनुभव करे।

इस पद पर श्रीनाथ का यह आक्षेप है कि हरि विना अस्त्रों के क्या करने गये? नखों से नोचने या दांतों से काटने? या तमाशा देखने? श्री हरि को भी अस्त्र संन्यास दिखलाना उचित नही जँचता। ऐसा कहना मानो अपने को लौकिकज्ञान से अनभिज्ञ बताना होगा। उस समय तो पोतना जी मौन रहे। एक बार समय पाकर भोजन करते समय कुछ कार्य के बहाने श्रीनाथ से वे पहले ही उठ गये। आंगन के कुए में पत्थर फेंककर चिल्लाये कि 'श्रीनाथ! लड़का कुआ में गिर पड़ा।' श्रीनाथ यह सुनते ही भोजन छोड़ कर जूठे हाथ ही दौड़ पड़े। पोतना ने पूछा कि रस्सी सीढ़ी लिये विना ही खाली हाथ क्यों दौड़ आये? तब श्रीनाथ की आंखें खुलीं। वे गद्गद् होकर उनके पैरों पर गिर पड़े।

उक्त कथन से पोतना का व्यावहारिक ज्ञान भी सूचित होता है। अब हम इस महाकवि के कविता-सौंदर्य पर थोड़ा-सा प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

रचना प्रकार—जैसे तुलसीकृत रामचरित मानस का आदि स्रोत बाल्मीकीय रामायण है, वैसे ही भागवत का मूल ग्रन्थ वेदव्यास रचित श्रीमद्-भागवत है। इसकी रचना में प्रधान आशय इसी ग्रन्थ का लिया गया है। मौलिक उद्भावनाओं तथा चामत्कारिक वर्णनों में यथास्थान यथोचित परिवर्तन किये गये हैं। यह उनकी प्रगाढ़ मौलिकता का परिचायक है। कपोल कल्पित कल्पनाओं तथा चामत्कारिक वर्णनों से कुछ स्थानों में बढ़ाने पर भी बाकी भागों में विषय भेद के बगैर यह व्यास विरचित मूल ग्रन्थ की टीका के सदृश ही है। मूल ग्रन्थ में न रहनेवाली सत्यभामा की युद्ध आदि कथायें विष्णु पुराण से ली गयी हैं। आकार में संस्कृत भागवत से अधिक इस ग्रन्थ को बढ़ाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। यह कार्य उन्होंने इच्छापूर्वक ही किया है। मूल में २० हजार श्लोक हैं जब कि अपनी भागवत में इन्होंने ३० हजार पद्य रचे हैं। ऐसा करने का कारण वे बताते हैं।

"भागवतमु तेलिसि पलुकुठ चित्रंबु शूलिकैन तम्मिचूलिकैन विबुधजनुल वलन विन्नंत कन्नंत तेलिय वच्चिनंत तेट परतू।"

अर्थात् भगवान् की महिमा एंव लीलाओं का वर्णन करके महादेव भी पार नहीं पा सकते फिर भी विबुध जनों से जितना मैं सुन चुका हूँ, जान चुका हूँ तथा देख चुका हूँ, उसी का वर्णन करूँगा।

शैली—अपनी शैली के विषय में वे कहते हैं—

"कोंदरकु तेनुगू गुणमगु कोंदरकुन् संस्कृतंबु गुणमगु रेंडुनु गोंदरकु गुणमुनगु नेनंदर मेप्पितु नरयै येडलन्।"

अर्थात् कुछ लोगों को संस्कृत, कुछ लोगों को ठेठ तेलुगू, और कुछ लोगों को दोनों पसंद है। अतः मैं अपनी शैली से सब को यथोचित रूप में यथास्थान संतुष्ट करूँगा।

आँध्र तथा संस्कृत दोनों भाषाओं पर इनका समान तथा पूर्ण अधिकार था। फलतः दोनों भाषाओं में इन्होंने अपनी परम कुशलता दिखाई है। ये भक्ति क्षेत्र में जितने महान् थे उतने ही कविता क्षेत्र में भी थे। वस्तुतः इनकी कविता इनकी भक्ति की ही प्रतिरूप थी। भक्ति के आवेश में आकर इन्होंने जो अनूठे पद रचे हैं, वे इतने मर्मस्पर्शी और हृदयहारी हैं कि अरसिक को भी एक बार रसलीन कर देते हैं। इन्होंने जो कुछ लिखा उसको सुन्दरता की सीमा पर पहुंचा दिया।

इनकी कविता साहित्यक, सुसज्जित एवं परिमार्जित है,इनकी वाणी में चमत्कृति से भरी उक्ति, प्रतिभापूर्ण पदावली का लालित्य, अलंकारों से सुसज्जित वाक्य विन्यास, भावपूर्ण सार्थक एवं सुन्दर शब्द संगटन है। इनकी शैली कठिन न होकर कर्ण मधुर होने से पाठकों में आनन्द उत्पन्न करती है। कविताओं के पढ़ते ही अर्थबोध हो जाता है। प्रायः कोमल पद समुदाय संकलित होने के कारण इनकी कविता में कौशिकी वृत्ति की ही प्रधानता है। ओज, प्रसाद, माधुर्य आदि काव्यगुण इनकी कविता में स्थान-स्थान पर प्रचुरता से पाये जाते हैं।

रसानुकूल शैली में ही रस परिपाक करने में ये सिद्धहस्त थे। शृंगार और करुण रसों से युक्त कौशिकी वृत्ति को तथा हास्य इंगित अद्भुत रस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधान भारतीय वृत्ति को ये पसंद करते हैं। इनकी रचना भक्ति-रस-प्रधान है। भक्ति-रस के लिये शृंगार रस को अंग के रूप में अंगीकार करके सबके मन को हरिभक्ति में डुबोकर आप्लावित करनेवाले पोतना को छोड़ अन्य कोई कवि तेलुगू में नहीं हैं। शृंगार-रस पूर्ण भक्ति रस इन की रचनाओं में जैसा है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। शृंगार वर्णन में पूर्ववर्ती कवियों की तुलना पोतना से नहीं की जा सकती। इनका शृंगार अन्य शृंगारी कवियों के शृंगार की भाँति अश्लीलता से भरा नहीं है, सर्वदा मर्यादित है। इनकी रस प्रवाहिनी लेखनी सब रसों की अविरल धारा बहाने में समर्थ हुई है।

शब्दालंकार—इनकी कविता में अंत्यानुप्रास की भरमार है। अंत्यानुप्रास विभूषित कविता बड़ी ही श्रवण सुखद होती है। अन्यान्य शब्दालंकारों में इन्होंने अंत्यानुप्रास का यथेष्ट प्रयोग किया है। इस प्रकार के मनोहर शब्दालंकार अन्य कवि की रचनाओं में कहीं नहीं पाये जाते। समासान्त वर्ण की एकता ही को अंत्यानुप्रास कहते हैं। इस प्रकार के अलंकार इनकी कविता में प्रचुरता से पाये जाते हैं। इनके प्रयोग में प्रायः क्रिया-पद को आदि में रख, बाद में कर्ता को रख, पश्चात् अनेक विशेषणों को कह कर विशेष्य से पद का अन्त किया जाता है। जिससे पद अत्यन्त हृदयग्राही होते हैं।

"कनियेन नारदुडंतन् विनयैकविलासुनिगमविभजनविद्याजानितोल्लासुन् भवदुःखनिरासुन् गुरुमनोविकाव्यासुन।

देखा है नारद ने—विनयैकविलास एवं निगम विभजन विद्याजनितोल्लास तथा भवदुःख निरास गुरुमनोविकास—व्यास को।

नानाविध शब्दचित्रों से वह पद कानों को कैसा मधुर लगता है!

"मंननमुलु सद्गतुलकु बोंतनमुलु घनमुलैन पुन्यमुलकु इदानींतन पूर्व महाघनिकृंतनमुलु रामनामाकृत चिंतनमुल्।"

रामनामामृत चिंतन ही सत्गति का मंत्र है। अनेक जन्मों के पापों को मिटाने का अमोघ अस्त्र है।

उक्ति वैचित्र्य का कैसा अनोखा ढंग है?

"ओक लतांगि माधवुनि युज्जल रूपमु जूङ्कि तीवलं जिक्का बहि हृद्गतमु जेसि वेलिं जनकुंड नेत्रमुल् ग्रक्कुन मूसि मेन वुलकंबुलु ग्रम्मग गोगलिंयुचुन् जाक्कमु लैन लोचवुल जोक्कुचु नुंडेनु योगि कैवडिन्।"

एक लतांगी गोपिका ने माधव के उज्वल रूप को अपनी दृष्टिलताओं से जकड़ कर हृद्गत कर लिया, एवं उस रूप को पुनः बाहर न जाने देने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा से झट आँखें बंद कर ली तथा पुलकित होकर आलिंगन करती हुई एक योगी के सदृश उस दिव्य रूप का लोचन भर पान करने में मस्त हो गई। उनकी अनन्य भक्ति का तथा पद शय्या का एक नमूना और देखिए।

"मंदार मकरंद माधुर्यमुनुदेलु मधुपंबु वोवुने मदन मुलकु;
निर्मल मंदाकिनी वीचिकल तूगु रायंच चनुने तरंगिणुलकु।
ललित रसाल पल्लव खादिरै चोक्कु कोयिल सेरुनेकु टिजमुलकु;
पूर्णेंदु चंद्रिका स्फुरित चकोरकं बरुगुने सांद्रनी हारमुलकु॥"

"अंबुजोदर दिव्य पादारविन्द
चिन्तनामृत पान विशेषमत्त,
चित्त मेरीति नितरंबु जेरनेर्चु
विनुत गुण शील माटशु वेयुनेला?"

मंदार मकरंद माधुय को पेट भर पीकर मस्त रहनेवाला मधुप कटीली झाड़ों में कैसे जा सकता है? निर्मल मंदाकिनी की लहरों में झूलनेवाला राजहंस कभी पल्वलों में कैसे जा सकता है? ललित रसाल पल्लवों में मस्त रहनेवाला कोकिल कुटिजों में कैसे जा सकता है? पूर्णेन्दु चंद्रिका से स्फुरित होनेवाला चकोर सान्द्र नीहारो में कभी कैसे जा सकता है?

अंबुजों के मध्यभाग की तरह भगवान् के दिव्य चरणों के चिन्तनामृत-पान से विशेष मत्त मेरा चित्त अन्यत्र कैसे लग सकता है? हे विनुत गुण शील! लाखों बातों से क्या लाभ है?

हमारे देश के समस्त प्रान्तीय साहित्य संस्कृत साहित्य के प्रतिबिंब मात्र हैं। वे देश और काल के व्यवधान होने पर भी एक ही क्रम से परिवर्धित भी हुए हैं। एक ही प्रकार की विचार धारा उनमें प्रवाहित हुई है। एक ही भाव की प्रधानता उनमें है। यह भाव मनुष्य जाति की सामाजिक समानता प्रकट करता है। देश और काल के भेद होने पर भी मनुष्य सर्वत्र मनुष्य ही रहता है। सभी प्रान्तों के साहित्य में ऐसे रससिद्ध कवीश्वर होते हैं, जिनके यशःशरीर को जरा और मृत्यु का भय नहीं रहता, परंतु ऐसे कवि सभी समय नहीं उत्पन्न होते।

जैसे आंध्र देश में भक्त पोतना हो गये थे, वैसे ही उत्तर भारत में महात्मा तुलसीदास भी हुए थे। ये दोनों कवि, विभिन्न प्रान्तों के होते हुए भी एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं। यह एक विचित्र बात है कि दोनों में बहुत-सी समानता भी पाई जाती है। और एक विचित्रता इस बात में भी है कि

113053

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे समकालीन थे। हाँ पोतना कुछ पूर्ववर्ती थे। दोनों ही सगुणोपासक थे, भगवान श्रीराम के अनन्य भक्त थे तथा भक्ति भावना के प्रचारक थे।

भारत के साहित्याकाश के उज्वल चन्द्रमा एवं हिन्दी वाङ्मय के विस्तीर्ण क्षेत्र पर सुधा बरसाने वाले महात्मा तुलसीदास ने जिस प्रकार अपनी अंतरात्मा की शांति एवं सुख के लिये मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र की परम पावनी कथा को लोकप्रिय भाषा में अत्यन्त मधुर शब्दों में गाया था, उसी प्रकार पोतना ने अपने उपास्य देव श्रीरामचन्द्र की आज्ञा से अपनी अंतरात्मा की शाँति के लिये भागवत की रचना की थी। रामचरित मानस के रचयिता प्रातःस्मरणीय महात्मा तुलसीदास ने जिस प्रकार अपने प्रभु को छोड़ अपनी वाणी का अन्यत्र कहीं दुरुपयोग नहीं किया है, उसी तरह भागवत के रचयिता महाकवि पोतना ने भी भगवत्-गुणानुवर्णन के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया है। इन दोनों को श्रीरामचन्द्र का दर्शन भी हुआ है। लेकिन पोतना में यह विशेषता थी कि वे तुलसी के समान वीतराग नहीं थे। निष्काम कर्मयोगी तथा गृहस्थ थे। वे अपनी गृहस्थी भिक्षाटन से नहीं खेती करके चलाते थे। भक्ति, ज्ञान और कर्म के शिक्षक थे। स्वयं शिक्षण केन्द्र थे।

महाकवि पोतना ने पाराशर व्यास के हृदय की उद्विग्नता से निकले भक्ति काव्य को लेकर महाप्रभु चैतन्य की तरह भक्ति का प्रवाह बहाया है। सूरदास की तरह भागवत के दशमस्कन्ध को लेकर मधुर गान किया है एवं तुलसी की तरह राम-कृष्ण और शिव को लेकर जो अल्प द्वैध भावनायें फूट निकलती हैं उनको दूर किया है, तथा कबीर की भाँति निराकार और साकार के चक्र में पड़नेवालों का जो झगड़ा है उसको एक दूसरे का अंग बनाकर अपनी भागवत में उसका सामंजस्य किया है।

हे आन्ध्र कवि! तुम्हारे जैसे कवि इस संसार में कितने हुए हैं जो गृहस्थ होते हुए भी संन्यासी हैं; दरिद्र होते हुए भी सुखी हैं, पत्नी और पुत्रों के बीच होते हुए भी अकेले हैं।

वह भूमि धन्य है, जहाँ तुम्हारी पद-धूलि धुली है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निबन्ध तथा आलोचना साहित्य में हास्य

[श्री त्रिलोकीनारायण दीक्षित एम० ए०]

भारतेन्दु-युग हिन्दी गद्य तथा पद्य की उन्नति का युग था। इसी युग में पत्र-साहित्य की भी प्रशंसनीय उन्नति हुई और पत्र-साहित्य की उन्नति का प्रभाव निबन्ध-साहित्य पर बिना पड़े न रहा। इस युग के पूर्वार्ध में निबन्ध का आकार तथा प्रकार अस्थिर-सा रहा। यह समय निबन्ध के शैशवावस्था का था। साहित्य के अन्य अङ्गों के हेतु दूसरे साहित्यों के आदर्श स्थापित थे, उनके सहारे कविता, नाटक, उपन्यास आदि की रचना की जा सकती थी परन्तु निबन्ध का व्यक्तित्व ही हमारे साहित्य के लिए नवीन था। भारतेन्दु जी का 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' तथा राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द का 'राजा भोज का सपना' और बालमुकुन्द गुप्त का 'एक दुराशा' तथा 'आशीर्वाद' हमारे साहित्य में एक वैचित्र्य का समावेश कर रहे थे। राधाचरण गोस्वामी की 'यम पुरी की यात्रा' और प्रताप नारायण मिश्र का 'आप' निबन्ध साहित्य के लिए एक घटना है।

भारतेन्दु युग के निबन्धों को एक साथ पढ़ने से एक अत्यन्त उदार तथा स्वाधीन चेतना की छाप पाठक के हृदय पर रह जाती है। निबन्ध को उस समय के लेखकों ने रोचक तथा उपयोगी माध्यम बनाया था। मुल्ला, पण्डित, वैदिक कर्मकाण्ड, तीर्थ-व्रत सभी इन लेखकों के व्यङ्ग के लक्ष्य थे।

भारतेन्दु जी के 'एक अदभुत अपूर्व स्वप्न' में व्यङ्ग और हास्य का अधिक निखरा रूप है। प्रारम्भ में तो गम्भीर शैली का आभास है किन्तु बाद में हास्य-रस की वृष्टि की गयी है। "देखो संसार-सागर में एक दिन सब संसार अवश्य मग्न हो जायगा। काल वश शशि सूर्य्य भी सब नष्ट हो जाँयगे[1]। इस प्रकार से आरम्भ करके देखिये हास्य शैली को अपनाते हुए निबन्ध की गम्भीरता किस प्रकार दूर करते हैं :—

"फिर भी पड़े-पड़े पुस्तक रचने की सूझी। परन्तु इस विचार में बड़े

[1] भारतेन्दु युग पृष्ठ ६८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काँटे निकले। क्योंकि बनाने की देर न होगी, कीट क्रिटिक काट कर आधी से अधिक निगल जाँयगे।" इस प्रकार की शैली से हास्य का सृजन करना परन्तु उसे ऊपर से गम्भीर बनाये रखना उतना ही कठिन है जितना दूसरों को हँसाते हुए स्वयं मुँह बन्द किये रखना।[1]

विद्यालयों के हेतु चन्दा इकट्ठा करके अपना पेट भरनेवाले लोगों की हँसी भारतेन्दु जी ने इस प्रकार उड़ायी है :—"पाठशाला बनाने का विचार करके जब थैली में हाथ डाला तो केवल ग्यारह गाड़ी हो मोहरें निकलीं। इष्ट मित्रों से सहायता ली तो इतना धन इकट्ठा हो गया कि ईंटों के ठौर पर मोहर चुनवा देने पर भी दस पाँच रेल रुपये बच रहते।"[2]

विद्यालय के उद्घाटन के समय व्याख्यान भी किसी यथार्थ भाषण की पैरोडी जैसा लगता है। पुलिस, कचहरी आदि पर प्रसंग मिलते ही भारतेन्दु जी व्यङ्गयात्मक शैली में हँसी उड़ाने लगते थे:—विद्यालय के नीति शास्त्र के अध्यापक पं० शीतदावानल नीतिदर्पण की प्रशंसा करते हुए कहते हैं:—इनसे नीति तो बहुत से महात्माओं ने पढ़ी थी परन्तु रावण, दुर्योधन इत्यादि इनके मुख्य शिष्य हैं और अब भी कोई कठिन काम आकर पड़ता है तो अँग्रेजी न्यायकर्ता भी इनकी अनुमति लेकर आगे बढ़ते हैं।[3]

राजा शिवप्रसाद जी की रचना में शिक्षा अधिक है, हास्य कम। परन्तु भारतेन्दु जी में हास्य अधिक है शिक्षा कम। गम्भीर शैली और हास्य का सामञ्जस्य उनके 'स्वप्न' की ही भाँति अद्भुत तथा अपूर्व है। भारतेन्दु जी एक सफल व्यङ्ग-लेखक थे।

"स्वर्ग में केशवचन्द्र सेन और स्वामी दयानन्द" में भारतेन्दु जी ने धर्मों की विभिन्नता और निराले स्वर्गों की कल्पना का उपहास किया है। यह निबन्ध उस समय की हास्य रस पूर्ण शैली तथा भावना का एक अच्छा उदाहरण है। सामाजिक कुरीतियों पर प्रकाश डालने के हेतु भारतेन्दु जी ने कोरी कल्पनाओं का आश्रय लेकर एक अच्छी कथा गढ़ डाली है। उस समय प्रेस-स्वाधीनता अधिक न थी इसीलिए लेखकों को व्यङ्ग का सहारा लेना पड़ता था।

राधाचरण गोस्वामी की 'यमलोक की यात्रा' में भी स्वप्न में देखी हुई

---

[1] भारतेन्दु युग पृष्ठ ६८, [2] पृष्ठ ६६, [3] पृष्ठ ६६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातों का विवरण है। इसमें प्रयुक्त व्यङ्ग राजनैतिक दमन, सामाजिक दुराचार आदि विशेष लक्ष्यों की ओर प्रेरित है।

भारतेन्दु के 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' में गम्भीर शैली का आभास दिया गया है। राधाचरण जी के व्यङ्ग और हास्य पर पाठक मुस्करा कर ही न रह जायेगा, वह जोर से खिलखिलाकर हँस भी पड़ेगा।

इस युग के निबन्ध लेखकों में श्री प्रतापनारायण मिश्र का नाम उल्लेखनीय है। मिश्र जी अत्यन्त विनोदप्रिय और सरस व्यक्ति थे। उनकी विनोद-शीलता तथा हास्य-प्रियता उन्हीं तक सीमित नहीं रही। उसकी स्पष्ट छाप उनके साहित्य के सभी अङ्गों पर समान रूप से पड़ी। निबन्ध साहित्य भी हास्य से अछूता न रहा। उनका 'ब्राह्मण' इसका प्रमाण है। वे हास्य प्रिय तो यहाँ तक थे कि सम्पादकीय स्तंभ भी हास्यपूर्ण रहता था। उनके निबन्धों में मनोरञ्जन का बाहुल्य है। हास्य उद्रेक के उनके पास दो साधन थे, श्लेष तथा कहावतें। इनके अतिरिक्त दो निराली बातों को एक साथ अप्रत्याशित भाव से रखना तो सभी हास्य लेखकों में पाया जाता है। शिष्ट भाषा और हास्य का प्रयोग मिश्र जी ने अपने निबन्धों में किया है।

आपके व्यङ्ग के विषय में कई लेखकों ने मत प्रकट किया है कि भाषा के बीच वह 'कुनैन गोली पर शकर सा' है। किन्तु शकर इतनी अधिक न होने पाती थी कि शकर के कारण कड़वाई ही छिप जाय। यह शकर प्रेस-ऐक्ट के फलस्वरूप ही प्रयुक्त होती थी। आपके हास्य पूर्ण निबन्धों में 'कलि कोष' 'मुक्ति के भागी' तथा 'होली है' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इस युग के सभी लेखकों की भाँति श्री बालकृष्ण भट्ट भी हास्य लेखन में अत्यन्त पटु थे। हास्य तथा व्यङ्ग को हम उस युग की विशेषता ही नहीं वरन् आवश्यकता भी कहें तो अधिक उचित होगा। भट्ट जी इन विशेषताओं से रहित न थे। उनके 'खटका' में हास्य का रङ्ग देखिए, "अजी, जीते जी तो कोई खटके से खाली रहता ही नहीं, मरने पर भी फिर जन्म लेने का खटका लगा रहता है।"[1]

श्री बालमुकुन्द गुप्त की कीर्ति का मूलाधार शिवशम्भु का चिट्ठा है। ये व्यङ्गपूर्ण निबन्ध भारतेन्दु जी तथा मिश्र जी की परम्परा का अनुकरण करके लिखे गये हैं। भँगेड़ी शिवशम्भु के दिवा-स्वप्नों के बहाने गुप्त जी ने

[1]भारतेन्दु-युग पृ० १२५।

४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection; Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशी शासन पर खूब व्यङ्ग कसे हैं। कवि-सुलभ कल्पना से उनकी व्यङ्ग कथा और भी चमत्कृत हो गयी है। गम्भीर से गम्भीर विषय में भी हास्य का समावेश वे किस प्रकार करते थे यह उनके 'एक दुराशा' तथा 'आशीर्वाद' से प्रकट हो जाता है।

भारतेन्दु-युग निबन्ध-साहित्य का शैशव-काल था। इस समय साहित्य के इस अङ्ग में हास्य का प्रयोग अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था। अतः भारतेन्दु-युग के पश्चात् निबन्धों में हास्य का सफल प्रयोग करना टेढ़ी खीर हो चला था। किन्तु इस युग के पश्चात् द्विवेदी-युग के कुशल लेखकों में श्री महावीरप्रसाद जी द्विवेदी, आचार्य मिश्रबन्धु, श्री पं० कृष्णविहारी जी मिश्र, श्री जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, श्री शिवपूजन सहाय तथा कौशिक जी गराय मान्य हैं। इस समय के लेखकों के साथ ही साथ बाबू महादेवप्रसाद सेठ, पं० पद्मसिंह शर्मा तथा श्री भगवानदीन जी और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी उल्लेखनीय हैं।

द्विवेदी-युग के आरम्भ में हिन्दी-साहित्य के अन्तर्गत वाद-विवाद का आधिक्य रहा। इस प्रकार के वाद-विवाद का मूल कारण था साहित्यिक जागृति तथा ज्ञान की गहनता। किसी एक विद्वान् को कोई विशेष प्रिय कवि रहा तो दूसरे को अन्य। इसी प्रकार रुचि विभिन्नता भी वाद-विवाद का कारण थी। ये वाद विवाद सम्बन्धी निबन्ध हास्य तथा व्यङ्गों से युक्त होते थे। 'देव-विहारी' सम्बन्धी तुलनात्मक निबन्धों में आचार्य मिश्रबन्धु तथा श्री पं० कृष्णविहारी जी मिश्र के व्यङ्ग सर्वथा हँसाने में समर्थ हैं। उनके व्यङ्ग शिष्ट तथा मर्यादापूर्ण हैं। उनके वाद-विवाद साहित्य गत हैं व्यक्ति गत नहीं।

इसी प्रकार द्विवेदी जी तथा श्री जगन्नाथप्रसाद जी चतुर्वेदी का कालिदास विषयक वाद-विवाद भी व्यङ्गात्मक हास्य से परिपूर्ण है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों में भी हास्य तथा व्यङ्ग के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। यथा—

"रसखान तो किसी की लकुटी अरु कामरिया पर तीनों पुरों का सिंहासन तक त्यागने को तैयार थे, पर देश प्रेम की दुहाई देनेवालों में से कितने अपने किसी थके माँदे भाई के फटे पुराने कपड़ों..........पर रीझ कर या कम से कम न खीझ कर बिना मन मैला किये कमरे की फर्श भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैली होने देंगे ....।[1] इसी प्रकार व्यङ्ग्यात्मक हास्य के अन्य सुन्दर उदाहरण उनके 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में मिलते हैं।

लाला भगवानदीन तथा पं० पद्मसिंह शर्मा ने भी कुछ निबन्धों में व्यङ्ग्यात्मक हास्य का प्रयोग किया है। परन्तु वे इतने व्यक्तिगत हो गये हैं कि हास्य के उत्पादन में प्रायः अधिक समर्थ नहीं हो सके हैं।

'दुबे जी की चिट्ठी' के लेखक श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा जी 'कौशिक' के निबन्धों में सफल हास्य का प्रयोग हुआ है। आपकी चिट्ठी में सामाजिक कुरीतियों पर विशेष रूप से व्यङ्ग्य कसे गये हैं। कौशिक जी शुद्ध हास्य लिखने में भी सिद्धहस्त हैं। उनके शुद्ध हास्य का एक उदाहरण देखिए। एक चिट्ठी में वह कलेक्टर से अपनी मुलाकात का वर्णन करते हैं। कलेक्टर साहब के कमरे में प्रवेश के पूर्व चपरासी उनके जूते तथा टोपी उतरा कर रखा लेता है। इस पर दुबे जी चपरासी के व्यवहार से अवाक् होकर साहब से कहते हैं, "आपके चपरासी ने टोपी जूते रखा लिया है, कोई खटके की बात तो नहीं है?" साहब बोले, "नहीं, डूबे जी, कोई फिकर का बाट नहीं है, अगर आप का टोपी जूता चला जायगा तो हम आपको हजार टोपी और हजार जूते देने सकटा है।" × × × × साहब, "डूबे जी," मैं बीच ही में बोल उठा, "साहब न मैं डूबा और न बहा हूँ। मैं हट्टा कट्टा आपके सामने बैठा हूँ। × × × × × साहब,-- "टो आप खिटाब लेगा?" मैंने सोचकर कहा, "ख़ैर मुझे आप खिताब दें या न दें मगर लल्ला की महतारी को ज़रूर कोई खिताब दे दीजिए। उसकी बदौलत मेरा भी नाम चल जायगा। रायबहादुरिन, रायसाहबिन, ऐसा ही कोई खिताब दे दीजिए।"

आलोचनात्मक निबन्धों में व्यङ्ग्यात्मक हास्य का प्रयोग करनेवाले लेखकों में सर्वश्री डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डा० रामविलास शर्मा, वेङ्कटेशनारायण तिवारी तथा चन्द्रवली पाण्डेय भी उल्लेखनीय हैं।

———

[1] चिन्तामणि पृ० १०६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णदास की प्रेयसी गंगाबाई

[श्री महावीरसिंह गहलोत एम० ए०]

अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि अधिकारी कृष्णदास की जीवनी वल्लभ सम्प्रदाय के प्रारम्भिक इतिहास का एक विशेष अंश है। कृष्णदास शरण में आने के पश्चात् भेटिया कर्म करते रहे और फिर अधिकारी रहे। अपने समय में सम्प्रदाय की सेवा-प्रणाली के वे विशेषज्ञ थे। सम्प्रदाय की वैभव-वृद्धि का बहुत कुछ श्रेय इनको ही है। यह जीवन भर निडर रहे; यह तो इसी से स्पष्ट है कि इन्होंने स्वयं गुसाईं विट्ठलनाथ जी का मन्दिर-प्रवेश बन्द कर दिया था। संघर्ष में यह सदा सफलता पाते रहे, पर दलबन्दी के खिलाड़ी न होने के कारण, अज्ञात लोगों ने, इनकी मृत्यु के पश्चात् इनकी जीवनी में कई मिथ्या कलुषित घटनाओं को जोड़ देने का प्रयत्न किया है। और इन्हीं अंशों की सत्यता और प्रामाणिकता पर विचार न करके आधुनिक शोधक इनके चरित्र में कपटता, दुर्बलता, नैतिक भ्रष्टता आदि के दोष निकाल रहे हैं। इनके जीवन के सभी प्रसंगों पर न लिखकर हम यहाँ पर एक ही आक्षेप पर विचार करेंगे।

"कृष्णदास को गंगाबाई क्षत्राणी सों बहोत स्नेह हतो" वार्ताकार के इन शब्दों और हरिराय जी 'भाव प्रकाश' नामक व्याख्या के आधार पर 'विद्या विभाग काँकरोली' का मत है कि कवि का गंगाबाई से अनुचित सम्बन्ध था। वार्ता के मर्मज्ञ श्री द्वारकादास परीख का मत है कि स्वयं कौतुहलप्रिय भगवान् ने कवि के उज्वल चरित्र को दृष्टि दोष से बचाने के लिए एक श्याम बिन्दु को रखा और वह है—'गङ्गाबाई का प्रसङ्ग।' कुछ भी हो, हमें तो कृष्णदास की जीवनी के सभी प्रसङ्ग (एकाध को छोड़कर) श्याम बिन्दु ही प्रतीत होते हैं। अधिक तो क्या कहें इतना बड़ा कवि और सम्प्रदाय का भक्त वैष्णव होने पर भी अन्त में कुछ धन के कारण प्रेत हुआ। कृष्णदास के जीवन के सभी ज्ञात प्रसङ्ग अवश्य घटे होंगे पर जिस रूप में वे आज लिखित मिलते हैं, वे अतिशयोक्तिपूर्ण हैं; यह समय आने पर सिद्ध किया जा सकता है। अभी तो हमें इस गङ्गाबाई के अस्तित्व पर ही विचार करना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"८४ वैष्णवों की वार्ता" में कृष्णदास की वार्ता के छठे प्रसङ्ग (वेङ्कटेश्वर प्रेस संस्करण, पृ० ३५५) में लिखा है—"कृष्णदास को गङ्गाबाई सों बहुत स्नेह हुतो सो श्री गुसाईं जी को न सुहावतो।" एक दिन भोग-सामग्री पर गङ्गाबाई की दृष्टि पड़ गयी "ताते श्रीनाथ जी आयेंगे नाहीं···श्री गुसाई जी सुनत ही तत्काल स्नान करि के···भीतरिया सों कही जो भात और बड़ी करो" सामग्री सिद्ध हो जाने पर पुनः आरती हुई और भगवान् ने भोग स्वीकार किया। इसी प्रसङ्ग को लेकर कृष्णदास को कुछ कहा गया और कवि ने प्रभुता के मद में आकर गुसाईं जी का मन्दिर में आना रोक दिया। यह स्थिति ६ मास तक रही। तब गुसाईं जी के ज्येष्ठ पुत्र गिरधर जी ने बीरबल की सहायता से कृष्णदास को पकड़वाकर मथुरा के बन्दी खाने में डलवा दिया। गुसाईं जी को जब यह ज्ञात हुआ तब उनको दुःख हुआ और उन्होंने ने तत्काल कृष्णदास को मुक्त करा दिया। परम कृपालु विट्ठलनाथ जी के चरणों में गिरकर कवि ने अश्रुओं द्वारा सब दुःख बहाया। इसी समय एक पद गाया जिसकी अन्तिम पंक्ति है—"कृष्णदास सुर ते असुर भये, असुर तें सुर भये, चरणन छोह।" "यह पद सुनि कें श्री गुसाईं जी बहुत प्रसन्न भयो पाछें श्री गुसाईं जी भोजन करि कें पधारे तब कृष्णदास सों कह्यौ जो अब जाउ भोजन करौ तब कृष्णदास भीतर गये तब श्री गिरधर जी ने श्री गुसाईं जी की झूठन की पातर कृष्णदास के आगे धरी तब कृष्णदास ने महाप्रसाद लीनों।"

काँकरोली द्वारा प्रकाशित 'भावप्रकाश' में लिखा है कि कृष्णदास ने "गङ्गाबाई की दृष्टि" वाली घटना से खीजकर गुसाईं जी का मन्दिर-प्रवेश रोका और पुरुषोत्तम जी से कहा—"तुम श्री आचार्य जी के बड़े पुत्र श्री गोपीनाथ जी हैं तिनके पुत्र हो। सो तुम क्यों चुप बैठि रहते हो···टीकेत तो तुम हो।" इस पर बालक "पुरुषोत्तम जी ने कही जो हमारी सामर्थ्य नाहीं है जो श्री गुसाईं जी सों बिगारें।" इस पर कृष्णदास ने कहा "हम सब करि लेंगे।"

'सम्प्रदाय-कल्पद्रुम' (पृ० ६६-६७) में गङ्गाबाई के कारण हुए कलह का इस प्रकार वर्णन किया गया है—गङ्गा का मन्दिर-प्रवेश गुसाईं रोकते हैं, तब कृष्णदास जी उनको रोकते हैं। 'गंगा की दृष्टि' का कहीं भी उल्लेख नहीं है। यह घटना (सम्प्रदाय-कल्पद्रुम के आधार पर) संवत् १६१८ में घटी जान पड़ती है। गोकुलनाथ जी के हास्य प्रसंग (भाग १ पृ० ५६ प्रसंग २६) में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णदास की दासी की दृष्टि का उल्लेख है। अति संक्षेप में 'नई सामग्री' सिद्ध कर के भोग लगाने का वर्णन है।

'भाव प्रकाश' (काँकरोली द्वारा प्रकाशित) में गंगाबाई की दृष्टि और षट् मास के कलह का कारण अलौकिक बताया गया है।

व्याख्याकार गो० हरिराय जी ने कहा है कि कृष्णदास ने "गंगाबाई क्षत्राणी कों प्रीति करि वाको बैठारि राखे।" इस कथन के कारण डॉ० दीनदयालु जी गुप्त ने भी लिखा है कि "कृष्णदास के चरित्र पर संदेह होने लगता है।" 'भावप्रकाश' ने गंगाबाई की जीवनी भी दी है कि उसका विवाह ११ वर्ष की आयु में एक क्षत्री से हुआ। उसके ९ पुत्र हुए और मर गए। १०वीं पुत्री हुई, जिसका विवाह भी किया। पर पुत्री भी मर गई तब गंगा ने "उसको गहनों लाख रुपैया को दाबि राख्यो"। और "ता पाछे बरस ५५ की भई तब झगड़ा के लिए श्रीनाथ जी द्वार आय के रही। सो कृष्णदास सों मिली के श्रीआचार्य जी सों सेवक होय की कही।" कृष्णदास भेटिया कर्म करते थे सो जब वह परदेश जाते थे तब गंगा मथुरा में रहती थी।

उपर्युक्त सभी प्रसंगों की मुख्य घटनायें हैं—(१) गंगाबाई के कारण कलह (२) गुसाईं जी को षट् मास तक मंदिर में न आने देना और (३) पुरुषोत्तम जी का गद्दी पर बिठाया जाना। अंतिम दो घटनाओं को हम सत्य मानते हैं पर गंगाबाई का प्रसंग हमें काल्पनिक जान पड़ता है। हमारे इस विवादास्पद काल का ठीक निर्णय "श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता" से होगा। इस वार्ता से ज्ञात होता है कि आचार्य महाप्रभु के गंगालाभ (संवत् १५८७) के पश्चात् उनके प्रथम पुत्र गोपीनाथ जी गद्दी पर बैठे और ३ वर्ष (संवत् १५९०) तक सेवा करते रहे, फिर दोनों पिता-पुत्र स्वधाम पधारे। संवत् १५९० के लगभग कृष्णदास और गुसाईं जी का मनमुटाव हुआ होगा। यह मन-मुटाव क्यों हुआ ? यह एक स्वतंत्र विषय है। यहाँ पर 'गंगाबाई का संबंध', इस मनमुटाव का कारण नहीं है, यही सिद्ध करना है। इस चर्चा को आरम्भ करने के पहले गंगाबाई की शरण तिथि को ज्ञात करना चाहिए।

गंगाबाई आचार्य जी की सेवक बनी थी। इस समय तक कृष्णदास भेटिया थे। १५७६ वि० संवत् में गोवर्धननाथ जी का पाटोत्सव हुआ था। तब भी कृष्णदास भेटिया थे। इस अवसर पर आचार्य महाप्रभु गोकुल आए भी थे। इसके पश्चात् वे पुनः दक्षिण की ओर गए थे। संवत् १५८७ वि० में तो वे स्वधाम पधार गये थे। इन तिथियों के आधार पर संवत् १५७५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगाबाई का शरण काल मान लें तो संगत ही होगा। शरण के समय वह ५५ वर्ष की थी तो उसका जन्मकाल लगभग संवत् १५२० वि० होगा।

कृष्णदास का जन्म संवत् १५५३ वि० (विद्या विभाग, काँकरोली द्वारा) और १५५२ वि० संवत् (डॉ० दीनदयालु गुप्त द्वारा) माना जाता है। इस जन्म संवत् का आधार भी हमारा ऊपर लिखित 'भावप्रकाश' ही है। तो इस प्रकार वस्तु स्थिति हुई—

संवत् १५५३ में कृष्णदास १ वर्ष के थे और गंगाबाई ३३ वर्ष की थी। संवत् १५७५ में कृष्णदास २२ वर्ष के थे और गंगाबाई ५५ वर्ष की थी। संवत् १५९० में कृष्णदास ३७ वर्ष के थे और गंगाबाई ७० वर्ष की थी।

उपर्युक्त निष्कर्ष से यह जान पड़ेगा कि कृष्णदास का गंगाबाई से प्रीति करना (?) और मुग्ध होकर घर में बिठा लेना (?) संगत नहीं जान पड़ता। यदि कलयुग को दृष्टि में रखकर विचार करें तो सम्भव है गंगाबाई ने कृष्णदास से प्रीति करनी चाही होगी, पर कृष्णदास लोक-लाज तजकर वृद्धा गंगाबाई से स्नेह-लग्न कर लें, अति असम्भव है। गंगाबाई को कृष्णदास की प्रेयसी मानना एक पाप कर्म होगा। इसलिए "प्रीति करि घर में रख लिया" का प्रसंग हमारे चरितनायक पर एक झूठा आरोप है। वार्त्ताकार, ज्ञात होता है,कवि पर बहुत कुपित है तभी तो वह कवि को झूठा भोजन तक खिला देता है। एक अन्य वेश्यावाले प्रसंग पर व्याख्या करते हरिराय जी अपने 'भावप्रकाश' में लिखते हैं कि "इनकी (कृष्णदास की) देखादेखी करे सो बहिर्मुख होय।" यदि कृष्णदास के सभी प्रसंगों की विवेचना की जाय तो अवश्य जान पड़ेगा कि कृष्णदास की मृत्यु के पश्चात् उनकी झूठी निंदा बहुत होती रही और उसी में, आज हमें स्वरयोग न देकर, वस्तुस्थिति ज्ञात करनी चाहिए।

मजे की बात यह भी है कि कृष्णदास की जेल यात्रा भी एक कल्पना है। संवत् १५९० वि० में गिरधर जी का बीरबल को कहकर कृष्णदास को कैद कराना हास्यप्रद है। बीरबल कभी भी मथुरा के फौजदार नहीं रहे और बीरबल से परिचय तो संवत् १६२० में (सम्प्रदाय द्वारा) माना जाता है।

२५२ वार्त्ता में ५१ वीं वार्त्ता गंगाबाई क्षत्राणी की है। बहुत कुछ वार्त्ता, "प्राकट्य वार्त्ता" में भी लिखी है। इस गंगाबाई और कृष्णदास से संबंधित गंगाबाई को कई लोग एक ही मानते हैं। बहुत सम्भव हो एक ही हों। दोनों गंगाबाई जाति में क्षत्रिय ही हैं और रहनेवाली भी ब्रज प्रदेश की ही हैं। यह दोनों सम्प्रदाय में एक ही मानी जाती हैं। अहमदाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० जेठालाल शाह एम० ए० २५२ वार्त्ता पर टिप्पणी देते[1] हुए इसकी ८४ वार्त्ता में वर्णित कुदृष्टि (कृष्णदास के प्रसंग में) का उल्लेख भी करते हैं।[2] यह २५२ वार्ता वाली गंगाबाई आजन्म अविवाहित रही। इनकी माता गुसाईं जी को कामभाव से भजती थीं। इस हेतु उसे गोकुल में नहीं आने दिया जाता था। सम्भव है यह गंगाबाई भ्रष्टा रही हो क्योंकि इनके काल में इस प्रकार के आक्षेप सम्प्रदाय पर होने लगे थे। सम्प्रदाय पर चरित्र संबंधी गड़बड़ी का आक्षेप सर्वप्रथम वि० संवत् १६६५ में दामोदर स्वामी ने अपने 'पाखंड धर्म नाटक' द्वारा लगाया था। जो कुछ हो, गुसाइं चरण के लीला विस्तार के बाद संवत् १६६० वि० तक ऐसी कोई भी घटना चरित्र-दोष संबंधी सम्प्रदाय में नहीं घटी। बाद में "सातों लाल जी" में एकता नहीं रही और कलह ने जड़ पकड़ ली। ऋण बोझ से सम्प्रदाय दबने लगा। कुछ सत्यवक्ता शोधकों ने सम्प्रदाय के इस अंधकार युगीन काल का वर्णन करते हुए लिखा है— "श्री गुसाईं जी ना बालकों ऐ तेमना लीला में पधार्या पछी धीमे धीमे कलियुगना प्राकृत दोषों नो अंगिकार कर्यो; अने ते अंगीकार मां श्री गिरधरजी मुख्यहता"।[3]

यह २५२ वार्ता वाली दूसरी गंगाबाई भी हमारे कृष्णदास से कभी भी संबंधित नहीं रही। कृष्णदास का चरित्र तो उज्जवल ही है। इस नई गंगाबाई का जन्म १६२८ वि० संवत् में हुआ और मृत्यु संवत् १७३६ में। जब इस गंगाबाई का जन्म हुआ था तब हमारे कृष्णदास की आयु ७५ वर्ष की थी। कृष्णदास और गुसाईं जी के मनमुटाव से समय संवत् १५६० में कृष्णदास ३७ वर्ष के थे तो गंगाबाई के जन्म होने में ३८ वर्ष की देर थी।

इस प्रकार अधिक विस्तार में न जाकर हम इतर सम्प्रदायों के ग्रंथों से उपलब्ध प्रमाणों को संचित रखते हुए, वल्लभ सम्प्रदाय द्वारा मान्य तिथियों द्वारा यह सिद्ध कर सकते हैं कि कृष्णदास का किसी भी गंगाबाई नामक क्षत्राणी से अनुचित संबंध नहीं था। इस शोध से क्यों न हिन्दी साहित्य के एक कवि की लीला-स्थित जीवात्मा शान्ति प्राप्त करे?

---

[1] २५२ वैष्णवन नी वार्त्ता, पृ० ६५ (प्र० लल्लूभाई छगनलाल देसाई)

[2] इस टिप्पणी का आधार एक लेख है—"गंगाबाई नी दृष्टि" ले० दा०दा० वेलजी नाथु भाई मिस्त्री (शुद्धाद्वैत-भक्तिमार्तंड, वर्ष ८; अंक ११-१२, पृ० १५)

[3] श्री गोकुलेश जी नु जीवन चरित्र, पृ० २६४ (ले० मगनलाल गांधी, प्रकाशक—लल्लुभाई छगनलाल देसाई, अहमदाबाद।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंडित प्रतापनारायण मिश्र

एक नाटककार तथा अभिनेता

[श्री त्रिलोकीनारायण दीक्षित एम० ए०]

हिन्दी नाटकों का श्रीगणेश भारतेन्दु-युग में हुआ था। भारतेन्दु-युग के विकास का इतिहास ही हिन्दी नाटकों के जन्म का इतिहास है। उस साहित्यिक जाग्रति काल के पूर्व हिन्दी में दो-चार नाटकों की रचना हो चुकी थी, जिनमें महाराज विश्वनाथ सिंह का आनन्दरघुनन्दन तथा बाबू गिरधरदास का नहुष विशेष उल्लेखनीय है। कला की दृष्टि से यह नाटक भी सफल नहीं कहे जा सकते। इनके पश्चात् भारतेन्दु ने अपनी प्रतिभा से साहित्य का क्षेत्र आलोकित किया। भारतेन्दु के समय में जनता तथा साहित्यकारों की अभिरुचि नाटकों की ओर पर्याप्त आकर्षित हो गई थी। उस समय के साहित्यकारों में भी नाटक-सृजन की लगन थी। पंडित प्रतापनारायण मिश्र उस युग के उन कतिपय साहित्यिकों में से एक थे जिन्हें न केवल नाटक रचना से प्रेम था वरन् अभिनय तथा नाट्य-कला की ओर पर्याप्त झुकाव था।

मिश्रजी ने विशेषरूप से दो प्रकार के नाटकों की रचना की थी :— (१) चरित्र प्रधान तथा (२) संगीतात्मक। चरित्र प्रधान नाटकों में कलिकौतुक, जुआरी, खुआरी, गोसंकट, हठी हम्मीर, कलिप्रभाव तथा जयनार सिंह उल्लेखनीय हैं। संगीत शाकुन्तल तथा कलि प्रवेश संगीतात्मक हैं। मिश्र जी की रुचि चरित्र प्रधान नाटकों की रचना की ओर अधिक थी। इस रुचि के मूल में जनहिताय उपदेश करने का लक्ष्य भी निहित था। उनके नाटक साहित्य की निधि होते हुए भी रंगमंच के हेतु पूर्णरूप से उपयुक्त थे। अपने युग की बुराई, राजकीय अत्याचार, आडम्बर तथा अन्य विशृंखलताओं को दूर करने के लिए मिश्रजी ने चरित्रप्रधान नाटकों की ही रचना अधिक उपयुक्त समझा था। वे चाहते थे कि जनता अपनी आँखों से दोषों के अंकित चित्र देखकर समझ जाय कि उनका उन्मूलन कितना आवश्यक है। गोसंकट की रचना गोवध की अधिकता से दुखी होकर की गई थी और हठीहम्मीर की रचना पतित जनता के उत्थान के लिए तथा भूतकालिक ऐश्वर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं सभ्यता के दिग्दर्शन के लिए की गई थी। इन चरित्र प्रधान नाटकों का जनता पर कितना प्रभाव पड़ा अथवा लक्ष्य की पूर्ति किस सीमा तक हुई इसका साहित्य के इतिहास में कोई भी उल्लेख नहीं उपलब्ध होता है। उस समय के पत्र भी इस विषय पर मूक हैं। परन्तु उनके विषय तथा कथा-वस्तु पर दृष्टिपात करने से यह बात सिद्ध हो जाती है कि नाटकों पर प्रभाव डालने की शक्ति निर्विवाद रूप से विद्यमान है।

मिश्र जी के नाटकों में कौतुक-कौतूहल को विशेष प्रधानता मिली है। व्यंग, उपहास, हास, तथा वाग्वैदग्ध्य के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण भी मिश्रजी के नाटकों में मिलते हैं। यत्र-तत्र पात्रों का चरित्र-चित्रण भी स्पष्ट नहीं चित्रित हो सका। 'ब्राह्मण'[1] की पुरानी फाइलें उलटने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जनता ने मिश्रजी के नाटक तथा उनके अभिनय का आदर किया था।

मिश्रजी के गीत नाटकों में 'कलिप्रभाव' उपर्युक्त श्रेणी में रखने के योग्य है। कारण कि इसका रचनाकाल तथा रचना-लक्ष्य एक ही है। 'संगीत शाकुन्तल' पर महाकवि कालिदास कृत अभिज्ञान शाकुन्तल की छाया अवश्य पड़ी है पर यह उसका अनुवाद नहीं है। इसी कारण इसके पाठ में कहीं विशेष आनन्द आता है और कहीं-कहीं पर तो बिलकुल नीरस ही प्रतीत होता है। इस बात को मिश्रजी ने स्वयं नाटक की प्रस्तावना में स्वीकार किया है—"आज कल की नाट्य-प्रणाली और लोगों की रुचि के विचार से हमने कहीं-कहीं मुख्य ग्रन्थ का आशय कुछ-कुछ घटा बढ़ा भी दिया है पर काव्य-रसिकगण विचार सकते हैं कि इस दोष से हम कहाँ तक बच सकते थे।"

---

[1] "इधर श्री भारत मनोरंजनी सभा ने २६ नवम्बर को श्री हठी हम्मीर और जयनार सिंह अथच २८ नवम्बर को कलिप्रवेश गीतरूपक एवं गोसंकट रूपक खेला था। जिसकी प्रशंसा तो अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना है क्योंकि इस पत्र का सम्पादक भी एक अभिनय करता था और दोनों नाटक भी उसी के लिखे हुए हैं एवं कानपूर में उसे दावा भी है कि श्री हरिश्चन्द्र की बराबरी करना तो पाप है पर उसी कवियों भर के महाराज मंत्री हम भी हैं—'रसा की हमसरी करना तो बरहमन है गुनाह। पर उस राहे शुअरा के वजीर हम भी हैं॥" 'ब्राह्मण' खण्ड ४ संख्या ४६। हरिश्चन्द्र संवत् ३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत नाटक की रचना मिश्र जी के जीवन के संध्या काल में हुई थी। नाटक-लेखन के लक्ष्य को मिश्रजी निम्न शब्दों में अभिव्यंजित करते हैं। "........कुछ हो यदि इसके द्वारा कहने-सुनने को यह उपालम्भ भी दूर हो जाय कि हिन्दी में कोई ऐसा नाटक नहीं है जिसे सचमुच गीतरूपक कह सकें—तो भी अपना परिश्रम सफल समझेंगे। (संगीत शाकुन्तल पृष्ठ २६)।

मिश्रजी अपने नाटकों की रचना समय की अभिरुचि के अनुसार करते थे। जनता हिन्दी के नाटकों की अपेक्षा पारसी कम्पनियों की ओर अधिक आकर्षित रहती थी फलतः जनता का आकर्षण ग्रहण करने के लिए मिश्र जी अनुवादों में भी रोचक स्थलों का समावेश कर देते थे। शाकुन्तल के पंचम अंक में कंचुकी निम्न शब्दों में अपनी दशा का वर्णन करता है।:—

अहो बत कीदृशीं वयोऽवस्थामापन्नोऽस्मि।
आचार इत्यधिकृतेन मया गृहीता,
या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः।
काले गते बहुतिथे मम सैव जाता,
प्रस्थानविक्लवगतेरवलम्बनाय ॥

इन पंक्तियों की अभिव्यक्ति के हेतु मिश्रजी ने अपनी बुढ़ापा कविता का समावेश कर दिया है। इस प्रकार नाटक साहित्यगत होता हुआ भी मनोरंजकता से ओत-प्रोत है। प्रस्तुत गीत-रूपक हिन्दी साहित्य के लिए एक नवीन देन है। इसके पूर्व हिन्दी में इस कोटि के अन्य नाटकों की रचना नहीं हुई थी। इसमें प्रभाती, कालंगड़ा, लावनी, ठुमरी, इत्यादि प्रायः ६०-६५ रागों का प्रयोग हुआ है। मिश्र जी ने 'प्रेमदास' तथा 'प्रतापहरि' नामों से विचित्र संगीतपूर्ण पदों की रचना भी की थी। यह सब इस बात के द्योतक हैं कि मिश्रजी संगीत विद्या में भी समान गति रखते थे।

मिश्र जी ने मूल ग्रन्थ के अनुसार अपने इस नाटक को भी सात अंक एक अंकावतार तथा एक विष्कम्भ से युक्त बनाया है। कविवर कालिदास की भांति ही मिश्र जी ने भी नाटक की संधियों तथा अन्य नाटकीय अंकों का प्रयोग किया है। मिश्र जी ने अंकों को भी दृश्यों में विभाजित कर दिया है। प्रत्येक पात्र अपनी भाषा में बोलते हैं। उसमें तत्कालीन जनता के भावों का भी समावेश उपलब्ध होता है।

मिश्रजी के नाटकों में छोटे-छोटे वार्तालापों का प्रयोग हुआ है। यत्र-तत्र लम्बे वार्तालाप भी प्राप्त होते हैं परन्तु उनमें रोचकता का अभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। उनके पात्र सभी दैनिक जीवन में उपलब्ध होनेवाले मनुष्य हैं। कल्पना जगत् का उनसे कोई संसर्ग नहीं है। पात्र दोषसुधार की भावना ग्रहण करके चलते हैं और उन्हें अन्त में सफलता भी उपलब्ध होती है। कलिकौतुक का 'प्रेमचन्द्र' पात्र ऐसी भावनाओं को लेकर चलनेवाला एक उल्लेखनीय पात्र है।

मिश्र जी के सभी नाटक अभिनय करने के लक्ष्य से लिखे गये थे। उनके जीवन काल में ही प्रायः सभी नाटक रंगमंच पर आ चुके थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि उन्हें पारसी कम्पनियों द्वारा अभिनीत नाटकों के सामने लोकप्रियता भी प्राप्त हुई थी।

कानपुर में उस समय 'श्री भारतरंजनी सभा' तथा 'एम० ए० क्लब' नामक दो संस्थाओं में नाटकों का अभिनय होता था। नाटकों के अभिनय में मिश्रजी भी बड़ी सुरुचि के साथ भाग लेते थे। फागुन के महीने में साधू का स्वांग भरने में इन्हें विशेष आनन्द आता था। इन स्वांगों को भरने में उनकी दाढ़ी से बड़ा सहयोग प्राप्त होता था। इकतारा लेकर उपदेश तथा हास्यपूर्ण कबीर गाने में आपको विशेष आनन्द आता था। मिश्रजी अभिनय कला में भी निपुण थे। वे आंगिक तथा आन्तरिक अभिनय सफलता के साथ कर लेते थे। मिश्रजी अधिकतर स्त्री का अभिनय करते थे। स्वभाव के हँसोड़ होने के कारण उन्हें प्रहसनों के अभिनय में खूब सफलता मिलती थी। उनके सजीव हास्य, मनोरंजक तथा स्वाभाविक अभिनय समस्त कानपुर की जनता को नाटक मंडली में आकर्षित कर लाती थी।

वैशाख सौर २० संवत् २००३, ता० ५ मई १९४६ की स्थायी समिति में रेडियो विषयक निश्चय

भारत सरकार के, के—४६२ संख्यक २० फरवरी तथा २४ अप्रैल १९४६ के पत्र पढ़े गए और उन पर विचार हुआ। निश्चय हुआ कि गवर्नमेंट ने अपनी नीति में जो परिवर्तन किया है, उसको देखते हुए सम्मेलन गवर्नमेंट के निमन्त्रण को स्वीकार करता है। किन्तु सम्मेलन अपनी यह नीति स्पष्ट कर देना चाहता है कि यदि एक ही भाषा-शैली में संवादों का प्रसार होना है तो वह भाषा ऐसी हिन्दी होगी जो न केवल संयुक्तप्रान्त, बिहार,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्य-प्रान्त, राजपूताना, मध्यभारत, दिल्ली और पंजाब में समझी जा सके किन्तु जो महाराष्ट्र, गुजरात, बंगाल, उड़ीसा और दूसरे प्रान्तों में भी समझी जा सके। इस भाषा में फारसी, अरबी और दूसरे विदेशी जन-साधारण में चले हुए शब्दों का बहिष्कार न होगा परन्तु भाषा का आधार देशी शब्द ही होंगे चाहे तत्सम रूप में चाहे तद्भव रूप में। नए शब्दों के बनाने में संस्कृत और प्राकृत का ही सहारा लिया जायगा, क्योंकि देश की अधिकतर प्रान्तीय भाषाओं का उनसे सम्बन्ध है। अरबी और फारसी आदि विदेशी शब्द जो चलन में हैं वे भी हिन्दी व्याकरण के अनुसार व्यवहार में आएंगे।

यदि इस प्रकार की एक भाषा चलाने में रेडियो विभाग असमर्थ हो तो यही उचित होगा कि वह हिन्दी और उर्दू में पूरी तरह से पृथक प्रसार करे।

सम्मेलन का प्रतिनिधि रेडियो विषयक उस कमेटी के निर्णयों से बंधा नहीं होगा जिसकी सिफारिश के अनुसार यह सलाहकार समिति बनाई गई है।

सम्मेलन के प्रतिनिधि भेजने में केवल इतना ही तात्पर्य समझना चाहिए कि भाषा-विषय के हल करने में सम्मेलन गवर्नमेंट के साथ सहयोग करने को तैयार है।

सम्मेलन के प्रतिनिधि को विशेष ध्यान इस विषय की ओर भी देना है कि संवादों को छोड़कर दूसरे विषयों में हिन्दी का सब प्रसार-केन्द्रों में हिन्दी बोलनेवालों की संख्या के अनुकूल अनुपात हो।

सम्मेलन के प्रतिनिधि को इस बात पर भी ध्यान दिलाना होगा कि रेडियो विभाग में हिन्दी के विद्वान् अधिकार के स्थानों पर नियत किए जांय; क्योंकि बिना इसके रेडियो में उपयुक्त भाषा का चलन सम्भव न होगा।

सम्मेलन अपने प्रतिनिधि को इसी आशा से गवर्नमेंट के साथ सहयोग करने के लिये भेज रहा है कि वह गवर्नमेंट को इस बात में सहायता दे कि भाषा के सम्बन्ध में उसकी नीति जनता की आवश्यकता के अनुकूल बने। सम्मेलन को भरोसा है कि उसके इस सहयोग से गवर्नमेंट का प्रसार विभाग दिन पर दिन जनप्रिय होगा। किन्तु यदि सम्मेलन के इस सहयोग से गवर्नमेंट ने अपनी नीति को सुधारने में कोई लाभ न उठाया तो सम्मेलन अपनी सहयोग की नीति पर फिर से विचार करेगा और हिन्दी जनता को आवश्यक आदेश देगा।

गवर्नमेंट ने जो कमेटी बनाई और उसकी सलाह पर एक स्थायी सलाहकार समिति का आयोजन किया जिसमें हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दुस्तानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचार सभा और अंजुमने तरक्की उर्दू के प्रतिनिधि होंगे—यह जनता के आन्दोलन और वहिष्कार का परिणाम है। सम्मेलन की यह समिति उन सब लेखकों, कवियों, वक्ताओं और पत्रकारों को बधाई देती है जिनके आन्दोलन और त्याग का यह परिणाम निकला है। यह समिति अब उस रेडियो वहिष्कार को भी उठाना उचित समझती है जो जयपुर सम्मेलन के समय से हिन्दी जनता ने अपनाया था और सब हिन्दी साहित्यिकों को स्वतन्त्रता देती है कि वे रेडियो विभाग के काम में इस दृष्टि से सहयोग दें कि हिन्दी की शक्ति दिन पर दिन बढ़े और जनता के सामने ऊँचे स्तर के प्रसार उपस्थित हों। साथ ही यह समिति उनको यह भी चेतावनी देती है कि हमारे आन्दोलन का जो छोटा-सा फल निकला है उसको पाकर हिन्दी साहित्यिक रेडियो विषयक चेतना को दुर्बल न पड़ने दें और हिन्दी के अधिकारों की रक्षा में निरन्तर सजग रहें।

यह समिति श्री मौलिचन्द्र शर्मा को प्रस्तावित स्थायी सलाहकार समिति में उपर्युक्त नीति के अनुसार काम करने के लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त करती है।

रामलखन शुक्ल, एम० ए०
प्रबन्ध मंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक परिचय

[श्री रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री]

प्रस्थान—(निबंधों का संग्रह) लेखक श्री कामताप्रसाद सरावगी। प्रकाशक पुस्तक भवन, बनारस सिटी वास्ते शान्ति मन्दिर कोट, गाजीपुर। प्रकाशन का समय मार्च सन् १९४६। मूल्य दो रुपये बारह आने। पृष्ठ संख्या २२५।

प्रस्तुत पुस्तक में श्री सरावगी जी के पन्द्रह उपयोगी निबन्धों का संग्रह किया गया है। ये निबन्ध मानव जीवन के लिए विशेष उपयोगी हैं। ऐसे नवयुवकों के लिए, जिन्हें शिक्षा का दौर समाप्त करने पर जीवन के प्रांगण में पदार्पण करना पड़ता है, इन निबन्धों से विशेष प्रेरणा मिलेगी। संग्रही लेखक ने संसार भर के उन्नत चरित्रों का उदाहरण देकर किंकर्त्तव्यविमूढ युवकों के लिए प्रेरणा प्राप्त करने की अच्छी सामग्री एकत्र कर दी है। उन महान् चरित्रों में कोई एकांगी दृष्टिकोण नहीं रखा गया है, वरन् साहित्य, राजनीति, धर्मनीति, व्यापार, व्यवसाय, स्वास्थ्य, दीर्घजीवन आदि अनेक दिशाओं के धुरन्धरों को सफलता किस प्रकार मिली—इसका विश्लेषण किया गया है। कहीं-कहीं उनके वाक्यों के उद्धरणों से विवेचनीय विषय को अधिक रोचक ढंग में उपादेय कर दिया गया है। सामाजिक कुरीतियों और दुर्नीतियों की ओर भी लेखक ने जिस ढंग से प्रहार किया है, वह बहुत सुन्दर बन पड़ा है। इन निबन्धों से जीवनपथ में भ्रान्त नवयुवकों को अपने लक्ष्य-निर्वाचन, आत्मविश्वास, साहस, उत्साह, शीघ्रनिर्णय, एकाग्रता, समय-परिपालन, परिश्रमशीलता, स्वास्थ्य, स्वावलम्बन आदि में विशेष सहायता मिलेगी। भाषा बहुत साफ, सरल, प्रवाहपूर्ण और रोचक है। ऐसी समयोपयोगी पुस्तकों का सर्वत्र आदर होना चाहिए।

मालिनी मन्दिर या फूलों की दुनिया—(कविता पुस्तक) लेखक श्री गांगेयनरोत्तम शास्त्री, प्रकाशन का समय अज्ञात, प्रकाशक श्री मकरन्द साहित्य मन्दिर गांगेयभवन, २८० चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता। मूल्य बारह आने। पृष्ठ संख्या एक सौ एक। छपाई सफाई उत्तम।

मालिनी मन्दिर में मालिन के मन्दिर (घर) की भाँति रंग-बिरंगे फूल, गुच्छे और मालाएँ कविता के कलेवर में सजाई गई हैं। सुविकसित हृदय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हारिणी गुलाब की माला से लेकर मन को दुखानेवाली मलिन मुरझी माला भी इसमें रखी गई है। तुलसीदल, पारिजात, बेला, जपापुष्प, चमेली, बिल्वपत्र, गेंदा, गुलमेंहदी, गुलमखमल, गुलचाँदनी, सदासुहागिन, दूर्वा, जूही, टेसू, धतूरा, बारहमसिया, रजनीगन्धा, चम्पक, चण्डमल्लिका, पञ्च-पल्लव, गन्धराज, कुन्द, कमल आदि भारतीय पुष्पों के अतिरिक्त आन्तिकोण (एण्टीकोना), आइपोनिया, आष्टर, डेलिटस, भारविना, करनेशन, आदि विदेशीय पुष्पों का भी सुन्दर वर्णन किया गया है। कई स्थलों पर मालिनी छन्दों की रचना से भी इसके 'मालिनी मन्दिर' नाम की सार्थकता सिद्ध की गई है।

मानवीय जीवन में पुष्पों की मोहकता का अपना विशिष्ट स्थान है, वे सहसा असहृदय को भी मुग्ध कर लेते हैं, हिन्दी में पुष्पों के इस प्रकार के मोहक वर्णन की कोई पुस्तक शायद नहीं है, शास्त्री जी ने इस कमी की पूर्ति बड़े सुन्दर ढंग से की है। इसमें न केवल पुष्पों के हृदयहारी वर्णन ही हैं वरन् उनके प्रचलित नामों की तालिका के साथ-साथ उनके आकार प्रकार, उनकी विभिन्न जातियों की सूचना तथा उनके सुन्दर रंगों का भी वर्णन किया गया है। शास्त्री जी ने विदेशी पुष्पों का संस्कृत नामकरण भी बड़े सुन्दर एवं युक्तियुक्त ढंग से किया है। उनमें यद्यपि अंगरेजी के ही शब्दों की आनुपूर्वी रखी गई है, फिर भी उनका एक संगत अर्थ होता है, जो भारतीयता से मेल खाता है।

सुन्दर छन्दों के साथ-साथ इस पुस्तक में श्रवण-सुखद सुन्दर गीतों का भी प्रयोग किया गया है। वर्णनों में स्थान-स्थान पर भारतीय संस्कृति एवं देश भक्ति का विचित्र पुट भी दिखाई पड़ता है। इस कलापरक दृष्टि के अतिरिक्त जीवनोपयोगी दृष्टि का भी शास्त्री जी ने इसमें पूर्ण उपयोग किया है। इसमें उद्यान संबंधी अनेक बातें भी उसी आकर्षक ढंग से वर्णित हैं। जैसे कौन पुष्प बहुत परिश्रम से उत्पन्न किये जाते हैं और कौन सरलतापूर्वक होते हैं।

सब मिलकर पुस्तक हिन्दी में अपने ढंग की अनूठी और आदरणीय है।

कालदहन (गीति नाट्य) लेखक श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' एम० ए० प्रकाशन का समय संवत् २००२ वि०, प्रथम संस्करण, प्रकाशक पुस्तकभंडार लहेरियासराय और पटना। मूल्य एक रुपया, पृष्ठ संख्या ५२, रंगीन कागज पर छपाई कलापूर्ण, सफाई उत्तम।

कालदहन एक प्रतीक काव्य है, जिसकी परम्परा हिन्दी में अब नयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। इसमें मनुष्य के सूक्ष्म मनोभावों तथा जीवन के निश्चित सिद्धान्तों को पात्रता दी गई है। अमूर्त को मूर्त किया गया है।

ईसकी कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार है। वृद्ध अतीत हवन कुण्ड के सम्मुख बैठकर अग्नि का बारम्बार आवाहन करता है। इसी बीच चेतना आ जाती है और अतीत को उसकी साधना के लिए उत्तेजित करती है। फिर विश्वास और आशा भी पात्र बनकर रंगमंच पर आ जाते हैं। उन्हें यह जानकर क्षोभ होता है कि यद्यपि मानवता प्रकाश के लिए आकुल है फिर भी प्रकाश क्यों नहीं मिलता? आगे चलकर अगले दृश्य में आशा के साथ चेतना आती है। भाग्यवादी पौरुष यहाँ एक वृक्ष से बधाँ हुआ दिखलाया गया है। उसके शिर पर तलवार लटक रही है और वह निश्चेष्ट है। चेतना और विश्वास यह भीषण दृश्य देखकर विस्मित हो जाते हैं। वे पौरुष को शक्ति की आराधना के लिए ललकारते हैं। फिर तो विचारों का बन्दी पौरुष अपनी मुक्ति के प्रति जागरूक हो उठता है, तलवार चुभने पर भी उसकी उपेक्षा करता है, और द्रुत वेग से बन्धन-विमुक्त हो जाता है। पर अभी काल का प्रभाव उस पर सन्निहित है, अभी उसे नैराश्य और भाग्यवाद से एकान्तिक मुक्ति नहीं मिल सकी है। चेतना और विश्वास एक बार फिर आते हैं और उसमें लक्ष्य-प्राप्ति की साधना का दृढ संकल्प पैदा कराते हैं। पौरुष अब पूर्ण रूप से जाग्रत हो उठता है। वह प्रलय का प्रतीक बनकर विद्युत्, अग्नि, ज्वार, तूफान, मरुभूमि और भूचाल सब को साथ लेकर चल पड़ता है। उसका लक्ष्य होता है काल का दहन। पौरुष के इस कालदहन में विश्वास आशा और चेतना सब सहायता करते हैं। हवन कुण्ड की अग्नि धीरे-धीरे प्रज्वलित हो उठती है, चिनगारियां निकल पड़ती हैं, क्रमशः हवनकुण्ड पूर्ण जाज्वल्यमान हो उठता है। भीषण लपटों से दिगन्त आपूरित हो जाता है और उसके बीच पौरुष सस्मित नेत्रों से देखता है।

इस संक्षिप्त कहानी का नाट्य-काव्य बहुत सुन्दर ढंग से सजाया गया है। गेय अतुकान्त पदों में उसकी सुन्दरता सुमधुर हो उठी है। कवि केवल कल्पनाकाश का विहारी नहीं है उसमें राष्ट्र और समाज की जागर्ति के उद्बोधन की भावना भी है। भाग्यवाद में आमस्तक डूबे हुए भारतीय विश्वास को कर्मवाद की ओर प्रेरित करने की उसकी यह अभिनव कल्पना भारतीयता से सराबोर है। वह प्रकारान्तर में यह बतलाना चाहता है कि भारत अपने अवचेतन पौरुष के जागरण से ही उन्मुक्त हो सकता है, उसे शिर पर लटकने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली तलवारों की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

काव्य गुणों से विमण्डित इस सुन्दर कृति के लेखक और प्रकाशक हमारी प्रशंसा के पात्र हैं।

परतन्त्र—राष्ट्रीय महाकाव्य—रचयिता श्री रघुवीरशरण मित्र। प्रकाशक अ० भा० राष्ट्रीय साहित्य प्रकाशन परिषद् मेरठ। प्रथम संस्करण, २००० वि०। मूल्य चार रुपये। पृष्ठ संख्या १५०।

प्रस्तुत राष्ट्रीय महाकाव्य पन्द्रह सर्गों में समाप्त हुआ है। इसका महाकाव्यत्व केवल सर्गों की संख्या द्वारा पूर्ण किया गया है। न इसका कोई मुख्यनायक है न कोई उपनायक। और न किसी अन्विति अथवा कथा-प्रवाह की रक्षा ही की गई है। भारत की विभिन्न राजनीतिक समस्याओं का दुखड़ा, प्रारम्भ में भारतभारती के ढङ्ग पर, कविता के कलेवर में बलात् इस प्रकार आबद्ध किया गया है जो कवि के प्रारम्भिक प्रयोग के साथ-साथ उसकी अशक्ति और अव्युत्पत्ति का भी परिचायक है। कहा जा सकता है कि कवि को अपनी भावुकता को रूप देने का उपकरण प्राप्त है और उसकी सफलता पर उसे आत्मविश्वास भी है। पर महाकाव्य की आत्मा तो दूर रही उसका शरीर भी वह सम्भाल नहीं सका है।

कवि में हमें प्रतिभा के जो कुछ ज्योतिरिंगण दिखाई भी पड़े वे अस्थान में प्रयुक्त होने के कारण मुमूर्षु-से लगे, उनकी जीवनी शक्ति इतनी चिरस्थायिनी नहीं थी कि किसी महाकाव्य को चमका सकते। प्रतिभा की इस अनधिकार चेष्टा से कवि का अहित हुआ है। अभी उसमें छन्दों की सार-सम्भाल करने की भी शक्ति नहीं है, सो भी ऐसे छन्दों की, जिनमें गेयता के अतिरिक्त वर्ण, मात्रा अथवा यति का भी झंझट नहीं था। छन्दोभंग अथवा स्वर-व्याघात का उदाहरण देने में ही एक बड़ी तालिका बन जायगी। व्याकरण की त्रुटियों की भी कमी नहीं है। कहीं-कहीं ऐसे क्लिष्ट शब्द रख दिये गए हैं, जो कोश के पन्नों पर ही प्रचलित हैं। छन्दों की पूर्णता के लिये बेकार शब्दों की भी भरमार है। इन सब उदाहरणों के लिए इस महाकाव्य के केवल दो-तीन पृष्ठों का देख लेना ही पर्याप्त होगा। सुनिये, मंगलाचरण का प्रथम छन्द।

सुखप्रद सुषुप्तिक नाथ! हे करुणेश! करुणागार हो।
रघुवीर हे वटपत्रशायी! दीन के भरतार हो॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे नाथ ! द्युतिअम्लान में, अब शरण मुझको दीजिए।
होकर सजग शुचि ! शेष शैय्या से व्यथा सुन लीजिए ॥

तीसरा छन्द

"वृषभानुजा से कर प्रणय, 'वृषभानुजा' क्यों त्यागते।
निष्पाप का क्या वृजन है, जो दूर उससे भागते ॥"

सामान्य पाठक सुघुतिकनाथ, द्युति अम्लान, वृजन शब्दों के प्रकृत प्रयोग पर क्या अर्थ लगाए ? करुणेश के बाद करुणागार से क्या याचना करे ?

इन सब बातों के बावजूद १५० पृष्ठ की पुस्तक का चार रुपया मूल्य किस विश्वास पर रखा गया है ? संभवत: रवीन्द्र, प्रसाद, महादेवी, पंत और निराला आदि की कविता पुस्तक भी इतनी महँगी नहीं बिक सकती ! इस प्रकार इस महाकाव्य के सारे प्रयोग एक खिलवाड़-से मालूम पड़ते हैं।

बन्दी—लेखक और प्रकाशक उपर्युक्त। प्रकाशन काल संवत् २००२। मूल्य तीन रुपये, पृष्ठ संख्या १५५।

प्रस्तुत कविता पुस्तक सचित्र और छपाई सफाई में सुन्दर ढङ्ग से निकाली गई है। इसमें कवि की उपर्युक्त पुस्तक के रचना काल से दो वर्ष का अन्तर उसकी प्रतिभा, व्युत्पत्ति और रुचि में कारण बन गया है। इसमें उसके कवि का आत्म विश्वास कविकर्म के लिए साधार और दृढ़ बन बैठा है। बन्दी उसकी कारा की करुण-ध्वनि है, जिसमें भारत की आत्मा का स्पन्दन है। कवि ने एक बन्दी की दृष्टि से जिन चित्रों को आकार दिया है, रंग भरा है वे स्पर्शी तो हैं पर मर्म के नहीं। उनमें अब भी एक कृत्रिमता है। शब्दों के कुचक्र में पड़कर कवि जहाँ भाषा और विन्यास गढ़ने बैठा है वहाँ भाव भाग गया है। भावुकता को कविता कामिनी के आवरण में सजाने के लिए छन्दों का बन्धन और शुष्क शब्दों का एकत्र करना ही सब कुछ नहीं है। भावों की भाषा कृत्रिम शृङ्गारों से विभूषित नहीं की जा सकती। 'कालिदास' बनने के लिए कवि को संयम, समय और सौभाग्य का उपकरण जुटाना चाहिए। फिर भी इस पुस्तक में वह कुछ सुधरा हुआ है, उसके कुछ गीत भावोन्मेष में सराबोर हैं जो नवयुवक पाठकों को रुचिकर लगेंगे।

इस कविता पुस्तक की भूमिका में कवि ने अपने दृष्टिकोण की सफाई और व्याख्या प्रस्तुत की है। उसकी यह भूमिका सरस, संवदेनशील और सशक्त है। उसी के शब्दों में उसका परिचय सुनिये।

'मैं जो कुछ भी लिखता हूँ, लिखने के लिए नहीं लिखता, प्रशंसा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए नहीं लिखता, कवि कहलाने के लिए नहीं लिखता, अपितु अपने हृदय के चित्र खींचता हूं। उन्हें संसार जो कुछ समझे लेकिन मैं यह कह सकता हूँ कि भावुक हृदय के अतिरिक्त मेरे हृदय को कोई भी नहीं समझ सकेगा। मेरे चित्र यथार्थ हैं, सजीव हैं, कला मेरी तूलिका है, हृदय के रंगों से वे रंगे जाते हैं, वेदना उनकी आत्मा है, भावुकता स्वरलहरी, निराशा परिधान, अनुभूति लाक्षणिकता है एवं सजीवता अभिव्यक्ति है। आँसुओं ने उनका शृंगार किया, कोई देवी उनमें बोली, पथराई आँखों ने उन्हें एक टक देखा। श्रम की भट्टी बुझी, भक्ति से भगवान मिले प्रेम की उपासना सफल हुई।'

कवि को समझने के लिए—विशेषतया इस कविता पुस्तक में—पाठकों को अब मेरी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। पुस्तक में कुल ६० के करीब गीत हैं, जो गेय हैं। राष्ट्रीय भावों की उड़ान एक निराशा और संवदेना के साथ उनमें सजीव है। कहीं-कहीं उक्तियों में उसके युवा कवि का रूप भी निखरा हुआ है। युवा कवि के ये लक्षण भविष्य के लिए मंगलदायी हैं। बन्दी रूप में वह पाठकों की सहानुभूति एवं आदर का पात्र है।

प्रेरणा—भी उक्त लेखक और प्रकाशक की एक देन है। इसका मूल्य २॥) । पृष्ठ संख्या १२८ तथा प्रकाशन काल १९४६ का जनवरी मास है।

प्रस्तुत पुस्तक में कवि ने अपने अस्सी गीतों का संग्रह किया है। गीत छोटे बड़े—दोनों प्रकार के हैं। इन कविताओं में कवि के विकास को देख कर हमें प्रसन्नता हुई। ये काल पाकर अधिक सशक्त और संवदेनशील बन पड़ी हैं। कवि की राष्ट्रीय भावनाओं को इनमें अनुकूल स्वर, स्वरूप एवं सौन्दर्य मिला है। इस प्रकार कविताकामिनी के साथ क्रीडा करते-करते मित्रजी को 'प्रेरणा' में वास्तविक कवि-प्रेरणा प्राप्त हुई है। अब उनका पथ प्रशस्त है, स्वर संयत है और भाव भी कुछ गम्भीर बने हैं। फलतः पुस्तक आदरणीय है।

झंकार—मित्र जी द्वारा सम्पादित एवं उक्त अ० भा० राष्ट्रीय प्रकाशन परिषद् मेरठ से प्रकाशित एक काव्य संग्रह है। इसमें सात कवियों एवं कवयित्रियों की रचनाओं का संग्रह किया गया है। साथ ही उनके संक्षिप्त परिचय और चित्र से पुस्तक को आकर्षक बनाया गया है।

"वे सातों कवि हैं, श्री मदनगोपाल सिंहल, श्री राजकिशोर कक्कड़ एम० ए०, श्री होमवती जी, श्री प्रभुदत्तस्वामी शास्त्री, श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी 'चन्द्र', श्री सावित्री देवी तथा श्री रघुवीरशरण 'मित्र'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रह में संगृहीत अधिकांश कविताएँ बहुत सरस और सुरुचिपूर्ण हैं। सफाई छपाई भी मनोरम है। मूल्य १२ आना है।

कार्यसमिति का तृतीय अधिवेशन

कार्य-समिति की एक बैठक शनिवार सौर ७ वैशाख संवत् २००३ ता० २० अप्रैल १९४६ को दो बजे दिन से प्रान्तीय सम्मेलन के अवसर पर शिकोहाबाद में हुई। निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे।

सर्वश्री माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन; बलभद्रप्रसाद मिश्र: जगन्नाथ-प्रसाद शुक्ल; पुरुषोत्तमदासटंडन; शुकदेव चौबे; श्रीनारायण चतुर्वेदी; वाचस्पति पाठक; आनन्द कौसल्यायन; उदयनारायण तिवारी; मौलिचन्द्र शर्मा।

१—नियमानुसार माननीय श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—प्रधान मंत्री ने कुछ विद्वानों को 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि देने के सम्बन्ध का अपना प्रस्ताव विचारार्थ उपस्थित करते हुए बताया कि नियमानुसार श्री सभापति जी तथा श्री कार्यवाहक उपसभापति जी ने प्रस्ताव उपस्थित करने की स्वीकृति दे दी है।

प्रधानमंत्री ने ज्येष्ठ सौर१ संवत् १९९४ तारीख १५ मई १९३८ की स्थायी समिति द्वारा स्वीकृत, इस सम्बन्ध की नियमावली भी पढ़कर सुनाई।

सर्वसम्मति से निम्नांकित सज्जनों को उपाधि देना स्वीकार किया गया तथा निश्चय हुआ कि प्रधानमन्त्री जी आगे की कार्यवाही करें।

सर्वश्री श्यामबिहारी मिश्र; शुकदेवबिहारी मिश्र; द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी; कामता प्रसाद गुरु; सकलनारायण शर्मा, महामहोपाध्याय; बाबूराव विष्णु पराड़कर, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी; गिरिधर शर्मा नवरत्न; नलिनीमोहन-सान्याल; मैथिलीशरण-गुप्त; राजेन्द्रप्रसाद; सम्पूर्णानन्द; माखनलाल चतुर्वेदी।

कार्यसमिति का चतुर्थ अधिवेशन

कार्यसमिति की एक साधारण बैठक रविवार वैशाख सौर ८ संवत् २००३, तारीख २१ अप्रैल १९४६ को २ बजे दिन से प्रान्तीय सम्मेलन के अवसर पर शिकोहाबाद में हुई। निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे—

सर्वश्री माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन; प्रयाग; आनन्द कौसल्या-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यन, प्रयाग; जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, प्रयाग; उदयनारायण तिवारी, प्रयाग; शुकदेव चौबे, प्रयाग; मौलिचन्द्र शर्मा, दिल्ली। (प्रधान मंत्री)

१—नियमानुसार माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—सम्मेलन-अधिवेशन की तिथियाँ दिसम्बर के बजाय अक्तूबर में रखने के सम्बन्ध में कराँची के प्रान्तीय सम्मेलन के मंत्री श्री हृदयनारायण जी मिश्र का २३-३-४६ का पत्र उपस्थित किया गया।

विचार विनिमय के बाद निश्चय हुआ कि अधिवेशन दिसम्बर में ही किया जाय तथा श्री कार्यवाहक उपसभापति जी से पत्र का मसौदा बनवाकर सारी स्थिति मिश्र जी को समझा दी जाय।

३—सम्मेलन के प्रकाशनों की बिक्री के सम्बन्ध में नियुक्त सोल एजेंट का—माघ मास के अन्त तक की बिक्री का—पूरा ब्यौरा तथा उस विषय में अर्थ विभाग की रिपोर्ट उपस्थित की गई।

साथ ही इस सम्बन्ध में श्री साहित्य मंत्री जी का विचार—कि अभी कई बातें जांचने की और विचार करने की हैं इसलिए इस पर विचार स्थगित रखा जाय—पढ़ा गया।

निश्चय हुआ कि श्री साहित्य मंत्री जी के सुझाव के अनुसार यह विषय आगामी कार्यसमिति तक के लिए स्थगित रखा जाय।

४—प्रधान मंत्री ने निम्नलिखित संस्थाओं के आवेदन पत्र विचारार्थ उपस्थित किए—

श्री हिन्दी सभा, नवलगढ़; भारतीभवन पुस्तकालय, फीरोजाबाद; हिन्दी भवन, दार्जिलिंग; मित्र-संघ, मुजफ्फरपुर; मगध हिन्दी पुस्तकालय, पटना; हिन्दी साहित्य समिति, नीमच; जनपद हिन्दी साहित्य सम्मेलन, बदायूँ; मित्र-मंडल, कानपुर; जनपद हिन्दी साहित्य सम्मेलन, फर्रुखाबाद; हिन्दी साहित्य संघ, जालौन; प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कराँची; हिन्दी सभा, भागलपुर; राजेन्द्र पुस्तकालय, छपरा।

और बताया कि नियमानुसार उक्त संस्थाओं के शुल्क आदि प्राप्त हो चुके हैं। यह भी बताया कि कराँची के प्रान्तीय सम्मेलन के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का भार राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मंत्री के ऊपर छोड़ा गया था और भागलपुर की हिन्दी सभा तथा छपरा के राजेन्द्र पुस्तकालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विषय में जानकारी प्राप्त करने का कार्य प्रचार मंत्री जी को सौंपा गया था। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मंत्री श्री आनन्द जी का विचार है कि उक्त प्रान्तीय सम्मेलन को सम्बद्ध करने का प्रश्न नियमावली के विचाराधीन रहने तक स्थगित रखा जाय।

भागलपुर और छपरा की दोनों संस्थाओं के बारे में प्रचार मंत्री जी ने अपने प्रचारक द्वारा जांच करवाई थी। प्रचारक जी की जाँच के आधार पर प्रचार मंत्री जी का सुझाव है कि उक्त दोनों संस्थाएं सम्बद्ध कर ली जायँ। शेष अन्य संस्थाओं में से नीचे लिखी दो संस्थाओं को सम्मेलन से सम्बद्ध करने के लिए श्री प्रबन्ध मंत्री ने सिफारिश की है और बाकी संस्थाओं को प्रान्तीय सम्मेलनों से सम्बद्ध होने की उन्होंने राय दी है।

१— हिन्दी सभा, नवलगढ़। २—हिमाचल भवन, दार्जिलिंग।

विचार विनिमय के बाद निश्चय हुआ कि सिंध के प्रान्तीय सम्मेलन पर इस वर्ष के अधिवेशन का भार डाला गया है अतएव उसका सम्बन्ध स्वीकार किया जाय।

प्रचार मंत्री जी की सिफारिश के अनुसार भागलपुर की हिन्दी सभा तथा छपरा के राजेन्द्र पुस्तकालय का संबन्ध भी स्वीकार किया गया।

इसी प्रकार प्रबन्ध मंत्री जी की सिफारिश के अनुसार नवलगढ़ की हिन्दी सभा तथा दार्जिलिंग का हिमाचल भवन का भी संबन्ध स्वीकार किया गया।

फीरोजाबाद के भारती भवन के विषय में निश्चय हुआ कि संस्था पुरानी है अतएव उसे सम्मेलन से संबद्ध किया जाय।

शेष के विषय में निश्चय हुआ कि प्रबन्ध मंत्री जी की राय के अनुसार उन्हें लिखा जाय कि वे प्रान्तीय सम्मेलन से अपना सम्बन्ध स्थापित करें और सम्बद्धता के लिए आया हुआ उनका रूपया वापस कर दिया जाय।

५—सदस्यता के लिए निम्नलिखित सज्जनों के आवेदन पत्र विचारार्थ उपस्थित किए गए—

विशेष सदस्य—सर्वश्री त्रिलोकीनाथ राय, प्रतापगढ़; बृन्दाप्रताप सिंह, प्रतापगढ़; गिरिजाशंकर, प्रतापगढ़; माताबदल पाण्डेय, प्रतापगढ़; रमाशंकर, सुल्तानपुर।

साधारण सदस्य—सर्वश्री ओमप्रकाश अग्रवाल, फीरोजाबाद; इन्द्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्त, फीरोजाबाद; रतनलाल, फीरोजाबाद; देवीदत्तत्रिवेदी, जोधपुर; राजेश्वर प्रसाद अरगल, कानपुर; नवलकिशोर पटना;

प्रधान मंत्री ने बताया कि उपयुर्क्त सज्जनों के आवेदन पत्र तथा शुल्क मिल चुके हैं।

श्री उदयनारायण तिवारी ने प्रस्ताव किया कि विशेष सदस्यता के लिए आए हुए आवेदन पत्र स्वीकार किए जाँय।

श्री शुकदेव चौबे ने प्रस्ताव का समर्थन किया।

सर्वसम्मति से उपयुर्क्त पांचों सज्जनों की विशेष सदस्यता स्वीकृत हुई।

साधारण सदस्यता के सम्बन्ध में प्रधान मंत्री ने कार्य समिति की २७-१-४६ की बैठक में स्वीकृत निश्चय (७) पढ़ कर सुनाया।

निश्चय हुआ कि उक्त निश्चय के अनुसार उपयुर्क्त छहों सज्जनों की सदस्यता स्वीकार की जाय और यदि वे लोग सदस्यता के लिए भेजे गए अपने पत्र तथा शुल्क वापस करना चाहें तो वे वापस कर दिये जायँ।

६—काडर कमेटी की शेष रिपोर्ट पर विचार का प्रश्न उपस्थित किया। विभागीय मंत्रियों की अनुपस्थिति के कारण विषय स्थगित किया गया।

७—सहायक मंत्री श्री रमाप्रसाद घिल्डियाल जी का १५-६-४६ का त्यागपत्र उपस्थित किया गया। त्यागपत्र पढ़ा गया।

विचार विनिमय के बाद निश्चय हुआ कि उनका त्यागपत्र स्वीकार किया जाय। स्थान पूर्ति के सम्बन्ध में अधिकार श्री कार्यवाहक उपसभापति तथा श्री प्रधान मंत्री को होगा। आवश्यकता हो तो विज्ञापन दिया जाय।

इस पद पर कार्यकर्त्ता की नियुक्ति हो जाने पर श्री पहाड़ी जी श्री प्रधान मंत्री अथवा श्री कार्यवाहक उपसभापति की आज्ञा के अनुसार उसको काम सुपुर्द कर दें।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातक

[प्रथम द्वितीय तथा तृतीय खण्ड]

अनुवादक : भदन्त आनन्द कौसल्यायन

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जयचन्द्रविद्यालंकार का कथन है कि "विश्व के वाङ्मय में 'जातक' जन-साधारण की सब से पुरानी कहानियाँ हैं; मनोरंजकता, सुरुचि, सरलता, आडम्बरहीन सौन्दर्य और शिक्षाप्रद होने में उनका मुकाबला नहीं हो सकता। ये बच्चों के लिये सरल और आकर्षक, जवानों और बूढ़ों के लिये भी रुचिकर और विद्वानों के लिये प्राचीन भारत के जीवन का जीता-जागता चित्रण करने के कारण अत्यन्त मूल्यवान हैं।"

प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या ५४०, डिमाई साइज; सजिल्द मूल्य ७॥)
द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या ४६४, डिमाई साइज; सजिल्द मूल्य ७॥)
तृतीय खंड, पृष्ठ संख्या ४४८, डिमाई साइज; सुन्दर जिल्द मूल्य १०)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अभूतपूर्व प्रकाशन

प्रेमघन-सर्वस्व

(प्रथम भाग)

'दो शब्द'-लेखक, माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन
परिचय-लेखक, स्वर्गीय आचार्य पंडित रामचंद्र शुक्ल

आधुनिक हिन्दी के एक निर्माता, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति, स्वर्गीय उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का विशाल संग्रह-ग्रंथ। हिन्दी में प्रथम और अपूर्व काव्य। लेखक के चित्रों से सुसज्जित और सजिल्द। मूल्य ६)

साहित्य मंत्री—हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० ए० ६२६

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्[तकें]

(१) सुलभ साहित्यमाला

१ [illegible]-गीत ≡)
२ राष्ट्रभाषा ।।)
३ [illegible]बावनी ≡)
४ पद्मावत पूर्वार्द्ध १), १।)
५ सूरदास की विनयपत्रिका ≡)
६ नवीन पद्यसंग्रह १।)
७ बिहारी-संग्रह ≡)
८ सती करुणाकी ।।)
९ हिन्दी पर फारसी का प्रभाव ।।≈)
१० ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार १।)

(२) साधारण पुस्तकमाला

१ अकबर की राज्यव्यवस्था ३)

(३) वैज्ञानिक पुस्तकमाला

१ सरल शरीर-विज्ञान ।।।) १।।)
२ प्रारम्भिक रसायन १।)
३ सृष्टि की कथा १।।)

(४) बाल-साहित्य माला

१ बाल नाटक-माला
२ बाल-कथा भाग २
३ बाल विभूति
४ वीर पुत्रियाँ

(५) नवीन पुस्तकें

१ सरल नागरिक शास्त्र
२ कृषि प्रवेशिका
३ विकास (नाटक) ।।[illegible]
४ हिंदू-राज्य शास्त्र
५ कौटिल्य की शासन-पद्धति १।[illegible]
६ गावों की समस्यायें
७ मीराँबाई की पदावली
८ भट्ट निबंधावली १।) [illegible]
९ बंगला-साहित्य की कथा [illegible]
१० शिशुपाल वध [illegible]
११ ऐतिहासिक कथायें [illegible]
१२ दमयन्ती स्वयंवर

नवीन पुस्तकें

१—मैथिली लोकगीत—रामइकबालसिंह 'राकेश', भूमिका लेखक—पण्डित अमरनाथ झा
२—गोरखबानी—स्व० डाक्टर पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
३—दीवाली और होली—(कहानी संग्रह) श्री इलाचन्द्र जोशी [illegible]
४—महावंश—भदन्त आनन्द कौसल्यायन
५—भोजपुरी लोकगीत में करुणरस—श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह
६—[illegible] का [illegible]य—(एकांकी नाटक) श्री उदयशंकर भट्ट [illegible]
७—राजस्थानी लोकगीत—स्व० सूर्यकरण पारीक [illegible]
८—सामान्य भाषाविज्ञान—डा० बाबूराम सक्सेना
९—काव्यप्रकाश—मम्मटाचार्य, अनुवादक स्व० हरिमंगल मिश्र
१०—समाचार पत्र शब्दकोष—डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी० [illegible]

प्रकाशक—श्रीरामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।
मुद्रक : श्रीगिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग ३३, संख्या ८—९ : ज्येष्ठ तथा आषाढ़ २००३

सम्मेलन-पत्रिका

कविवर तानसेन

[डा० सुनीतिकुमार चटर्जी एम० ए० डी० लिट्]

संगीतकार तानसेन के नाम से भारतवर्ष के सब लोग परिचित हैं। परंतु तानसेन केवल एक युगावतार संगीत-रचयिता और गायक ही नहीं थे, वह एक उच्चश्रेणी के कवि भी थे, यह उनके रचित ध्रुपद गानों की वाणी या शब्दों से पूर्णतया प्रतीत होता है। विभिन्न राग-रागिनिओं में उन्होंने जो गीत रचे हैं, वे उनकी अतुलनीय कवित्व-शक्ति के परिचायक हैं।

भारत के कलावंतों में प्रचलित संगीत-रीति ने ही इस देश की प्राचीन अर्थात् मुख्यतः मुसलमान-पूर्व युग की संगीत पद्धति की शैली की रक्षा की है। भारत के Classical अर्थात् उच्चकोटि के संगीत के रूप में स्वीकृत होकर, उसके सांस्कृतिक जीवन में इस कलावंत-संगीत ने ही अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। भारतवर्ष का कलावंत-संगीत दो मुख्य विभाग या रूपों में मिलता है—एक हिन्दुस्थानी या उत्तर-भारतीय और दूसरी कर्णाटकी या दक्षिण-भारतीय। बीती हुई कई शदिओं के इतिहास में उत्तर भारतीय ढंग के संगीत में तानसेन और दक्षिण भारतीय चाल के संगीत में त्यागराय (जो कि आन्ध्र या तेलुगू भाषी थे और श्रीरामचंद्र जी के भक्त थे और जिन्होंने ईस्वी सन् १८४७ में देह त्याग किया था)—इन दोनों के नाम सर्वप्रधान हैं। इन दोनों संगीतपद्धतियों की जाति एक होते हुए भी हिन्दुस्थानी और कर्णाटकी संगीतों में कुछ पार्थक्य है। साधारणतया लोगों का विचार है कि कर्णाटकी संगीत ही शुद्धतर है। क्योंकि इस में भारत के बाहर से आये हुए विदेशी मुसलमान अर्थात् इरानी और तुरकी उपादान प्रवेश नहीं कर सके; पर हिन्दुस्थानी संगीत में ईरान, तुर्किस्तान, ईराक तथा अरब स्थान से आई हुई वस्तुएँ कुछ न कुछ मिल गई हैं। और इससे इस की विशुद्धि नष्ट हो गई है। परंतु उत्तर भारत के ध्रुपद संगीत पर बाहर का प्रभाव उतना नहीं आने पाया, यह भी एक रूप से प्रायः सबों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान लिया है। प्राचीन हिन्दू संगीत का विशिष्ट रूप या ढंग हमारे ध्रुपद में ही ज्यादातर अविकृत रहा है। तम्बूरा, पखावज और बीन की संगत से गाये हुए ध्रुपद के गीत से, हजार साल के या उस से भी अधिक पुराने काल के हिन्दू गाने का कुछ आभास हमें मिलता है। ख्याल, टप्पा, ठुमरी—ये सब तो पिछले युगों की सृष्टि हैं, जो कि मुसलमान बादशाहों के दरबारों में ध्रुपद ही के आधार पर बनायी गईं। इनमें भारत के विभिन्न प्रान्तों के तथा भारत के बाहर के देशों के संगीत की कुछ विशिष्टताएँ आ गई हैं। केवल विशुद्ध ध्रुपद की सीधी, सबल और विराट् महिमा की तुलना भारतीय संगीत में और कहीं नहीं मिलेगी और ऐसी चीज दूसरे देशों के संगीत में भी विरल है।

आजकल जो ध्रुपद हम सुनते हैं, उसकी जड़ हिन्दू-युग तक पहुँचती है, यह तो सच है। पर यह मुख्यतया ईस्वी पन्द्रहवीं से सतरहवीं शताब्दी की वस्तु है। भारतवर्ष की आर्यभाषा में तथा भारत के शिल्प में जिस प्रकार का विकाश अथवा क्रम-विवर्तन हमें दीख पड़ता है, उसी प्रकार का विकाश भारत के संगीत के इतिहास में भी अपेक्षित है, ऐसा सोचना अनुचित नहीं होगा। पहिले आदि आर्यभाषा या "संस्कृत" फिर उसके विचार से मध्य आर्य या "प्राकृत" उसके बाद, प्राकृत के परिवर्तन से नव्य-आर्य या "भाषा"—इस क्रम के अनुसार भारतीय आर्यभाषा की परिणति हुई है। शिल्प के इतिहास में हम इस प्रकार देखते हैं। बुद्ध के पूर्वकाल के लुप्त भारतीय मिश्र आर्यानार्य शिल्प में प्राचीन भारत के शिल्प की प्रतिष्ठा या स्थापना हुई थी। उस शिल्प ने, मौर्य तथा सुंग युग के भास्कर्य-शिल्प में, विशिष्ट भारतीय या हिन्दू शिल्प के रूप में, ईसा के पूर्व कई शदिओं में आत्मप्रकाश किया था। तदनंतर, कुषाण और आंध्र युगों के शिल्प के माध्यम से इस प्राचीन हिन्दू शिल्प की धारा प्रवाहित एवं पुष्ट हुई थी और गुप्त सम्राटों के काल के और उनके समय के पीछे की कई शदिओं के प्रौढ़ हिन्दू-शिल्प में इसकी चरम उन्नति हुई थी। उसके बाद, परवर्ती युगों के जटिलतामय रूपों में हिन्दू-शिल्प का आंशिक अवनमन् हुआ था। संगीत के संबंध में भी ऐसा क्रम या ऐसी धारा हम अनुमान कर सकते हैं। परन्तु शुद्ध हिन्दू संगीत की इस धारा की अवस्था से, जो कि आज के ध्रुपद में पाई जाती है, प्राचीनतर किसी अवस्था का कोई निदर्शन संरक्षित नहीं हुआ। भारतीय आर्यभाषा के इतिहास में यदि प्राचीन हिन्दी अथवा अपभ्रंश से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीनतर प्राकृत और संस्कृत आदि और कोई निदर्शन नहीं मिलते तो भारतीय संगीत के इतिहास से उसकी समता दिखाई देती। ध्रुपद को निम्न-मध्य-युग के हिन्दू शिल्प के साथ हम संतुलित कर सकते हैं; किन्तु ध्रुपद का पूर्व रूप, जिसे हम ऊर्ध्व-मध्य गुप्त और कुषाण युगों के शिल्प के साथ बराबरी रखनेवाला समझ सकते हैं, विलुप्त हो गया है।

जो कुछ हो, शंकरानंद सरवरिया, रघुनन्दन व्यास, गोपाल नायक, अमीर खुसरो, विवेक स्वामी, सदानंद व्यास, सूरदास, रामदास स्वामी, बैजू बावरा, मुहम्मद गौस, हरिदास स्वामी, तानसेन, सदारंग, शोरी मियाँ इत्यादि संगीतकार और गायकों के हम चिर-कृतज्ञ रहेंगे। क्योंकि प्राचीन भारतीय संगीत के संरक्षण तथा इसके युगानुसारी विवर्तन में इन्होंने बहुत कुछ किया था। बहुत-सी नई नई वस्तुएँ भी इनके द्वारा आई हैं। कहते हैं कि ख्याल अमीर खुसरो का सर्जन है। स्वयं तानसेन ने भी कुछ प्राचीन रंगों के नये रूप दिये हैं, जैसे मल्हार राग का एक नया रूप उनके नाम के अनुसार "मियाँ-की-मल्हार" नाम से परिचित है, और "दरबारी कानड़ा" नाम का नया राग उन्हीं की सृष्टि है। परंतु ज्यादातर ये संरक्षक ही थे। यदि इनमें प्राचीन संगीत पर गंभीर अनुराग और प्राचीन रीति को विशुद्ध और अविकृत रखने का प्रयास न रहता तो हमारे प्राचीन हिन्दू युग का या मध्ययुग का संगीत जहाँ तक रक्षित हुआ है न हो सकता।

इस प्रसंग में यह बताया जा सकता है कि ध्रुपद संगीत प्राचीन का केवल अविमिश्र रूप से संरक्षण या अंध अनुकरण मात्र न था। ऐसा अगर होता तो ध्रुपद इतने दिनों तक इस प्रकार जीवित न रह सकता। अब तक ऐसे बहुत लोग हैं जो कि ध्रुपद से आनंद उठाते हैं। और ये लोग सब के सब केवल पेशेवर उस्ताद या शिक्षित कलावंत नहीं होते हैं, इनमें बहुत से मामूली संगीत रसिक भी होते हैं। आमतौर पर जनता में "कलावंत गाना" आज कल इतनी दिलचस्पी नहीं ला सकता। यह तो सच है पर इसकी चर्चा और इसकी उपयुक्त मर्यादा शिक्षित समाज में घटती तो है नहीं (हम बंगाल की बात कह रहे हैं)। ध्रुपद संगीत में अभी नया सर्जन हो सकता है, होता भी है, उसके उदाहरण-स्वरूप कुछ साल पूर्व बंगाल के विष्णुपुर के विख्यात संगीतकार घराने के गायक संगीतरत्नाकर श्री सुरेन्द्रनाथ जी वंद्योपाध्याय ने महात्मा गांधी जी के किसी उपवास के उपलक्ष में "राग गांधी" नाम से जो एक बड़ा सुन्दर सुर बनाया था, उसका उल्लेख किया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह "राग गाँधी" और उसकी आनुषंगिक ब्रजभाषा में लिखित वाणी सन् १६३२ के दिसंबर के "विशाल भारत" में छप चुकी है। ऐसी नई रचना के द्वारा और कुछ न हो सिर्फ इतना तो सिद्ध होता है कि ध्रुपद संगीत एक दम मर नहीं गया। मृत या अप्रचलित कहकर ध्रुपद के आदर या ध्रुपद की चर्चा को मिटा देना—मृत भाषा कह कर संस्कृत पाली प्राकृत या ग्रीक लैटिन का अनादर करना या इनकी चर्चा को एकदम बंद करना इन्हें सीमित कर देना होगा।

सौभाग्य से सम्राट् अकबर से तानसेन का संयोग हुआ था, इस कारण तानसेन की जीवनी या इनके कलाकार जीवन की दो-चार बातों के संबंध में हमें कुछ सूचनाएँ मिलती हैं। अकबर और जहाँगीर के समय की चित्रावलियों में तानसेन की प्रतिकृति भी खींची गई थी। जहाँगीर के समय में बने हुए तानसेन के चित्र मिले हैं। ऐसे एक चित्र पर तानसेन की मूर्ति के बगल में फारसी अक्षरों में उनका नाम भी लिख दिया गया है। तानसेन कद में छोटे थे। रंग उनका गोरा नहीं था बिल्कुल काला या सावँला था, होंठ पर पतली मूछें भी थीं। और एक दूसरे चित्र में तख्त पर बैठे हुए जहांगीर के सामने तानसेन खड़े हैं। जिस समय जहांगीर युवराज थे यह उसी समय का चित्र मालूम होता है। जहांगीर ने अपनी आत्मकथा में तानसेन के गुणों की तारीफ की है। तीसरे चित्र में जहांगीर के दरबार में गवैयों और बजानेवालों के बीच में खड़े हुए तानसेन मिजराव से सरोद-सा एक यंत्र बजा कर गा रहे हैं। गाने और बजाने में और कई गवैये इनके साथी हैं। इन चित्रों के अलावा खास मोगल शैली का और भी एक चित्र है। जिस में अकबर और तानसेन के जीवन की एक घटना दिखाई गई है। संगीत में तानसेन के गुरुओं में एक हरिदास स्वामी थे। आप एक संसारत्यागी संन्यासी थे और वृन्दावन में रहकर संगीत के द्वारा अपना साधन-भजन करते थे। हरिदास स्वामी की प्रशंसा सुनकर उनका गाना सुनने के लिये अकबर बड़े ही उत्सुक हुए, परंतु हरिदास स्वामी ने राजधानी में आना नहीं पसंद किया। तब स्वयं अकबर तानसेन के साथ हरिदास स्वामी के आश्रम पर गए। आश्रम में उपस्थित शाहनशाह के सामने भी हरिदास स्वामी ने गाना अस्वीकार कर दिया। आखिरकार तानसेन ने स्वयं अपने गुरूजी के समक्ष गाना शुरू किया और जानबूझ कर गलत गाया। इस से चेले को दुरुस्त कर देने के ख्याल से हरिदास स्वामी स्वयं गाने लगे। फिर तो उनका गाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चल पड़ा। कहते हैं, हरिदास ऐसे सिद्ध गायक का गाना सुन कर अकबर भावावेश से ऐसे अभिभूत हुए कि कुछ काल के लिये बेहोश हो गये। होश में आकर उन्होंने तानसेन से पूछा—'क्यों तानसेन अपने गुरू की तरह नहीं गा सकते?' तानसेन ने जवाब दिया—'महाराज, मैं गाता हूँ तो एक पार्थिव सम्राट् की सभा में। पर मेरे गुरू गाते हैं परमेश्वर के दरबार में।' यह सुन्दर कहानी एक मोगल चित्रपट पर चित्रित हुई है। लम्बे कद के गोरे पतले हरिदास स्वामी अपनी कुटिया के सामने मृगचर्म पर बैठे तम्बुरा लेकर गा रहे हैं, कुटिया के दरवाजे के बाजू केले और दूसरे पेड़ों के हरे पत्तों से शीतल छाया वाले दिखाई देते हैं। दुबले-पतले काले रंग के तानसेन जमीन पर बैठे हैं। और बादशाह अकबर खड़े होकर गाना सुन रहे हैं। कुछ दूर पर बादशाह के तम्बू के कनात और ऊँट आदि की सवारी दिखाई पड़ती है, और इस से भी दूर पर दिवार से घेरे हुए एक नगर का दृश्य दिया गया है।

तानसेन की ये तस्वीरें हमें प्राप्त हैं। तानसेन के विषय में कुछ कहानियां भी मिली हैं, परंतु उनकी सच्ची जीवन-कथा हमें आजतक उपलब्ध नहीं हुई। उनके जीवन की बहुत-सी मुख्य बातें बहुत रहस्यपूर्ण रह गई हैं। अकबर के सभापंडित और दरबारी ऐतिहासिक अबुलफजल ने अपनी आईन-इ-अकबरी में अकबर के वेतनभोगी छत्तीस दरबारी गवैयों में और यंत्रिओं के नाम दिये हैं, उनमें तानसेन का नाम सब से पहिला है। और तानसेन के बारे में अबुलफजल ने ऐसा लिखा भी है कि विगत सहस्त्र वर्षों में उनके समान कोई भी गायक भारतवर्ष में नहीं हुआ। १९३४ वि० सं० (१८७७—१८७८ इस्वी) में राजा शिवसिंह सेंगर ने "शिवसिंह-सरोज" नाम से हिन्दी कविओं की जीवनी के साथ एक कविता संग्रह ग्रंथ प्रकाशित किया था। उस में उन्होंने तानसेन के जीवन की कुछ घटनाएँ लिपिबद्ध की थीं। १८८९ सन् में सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने New Modern Venacular Literature of Hindustan नामक जो उपयोगी पुस्तक प्रकाशित की थी, उस में तानसेन की जीवन-कथा "शिवसिंह-सरोज" से उद्धृत कर के दी गई। शिवसिंह का विचार था कि संवत् १५८८ (इस्वी १५३१—१५३२) में तानसेन का जन्म हुआ था। शिवसिंह ने कुछ प्रमाण नहीं दिया। उनके द्वारा प्रस्तावित यह तारीख संभवतः ठीक नहीं है, क्योंकि इस तारीख को मानने से तानसेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जीवन की कुछ विदित घटनाओं में असंगति दिखाई देती है। ऐसा हो सकता है कि उनका जन्म लगभग १५२० ईस्वी में हुआ हो। अकबर के दरबार में लिखे हुए फारसी इतिहास के अनुसार उनका मृत्युकाल था ९९७ हिजरी, अर्थात् १५८९ इस्वी सन्। तानसेन की मृत्यु अकबर की मृत्यु से पहिले ही हुई थी। खुद अकबर के नाम से प्रचलित एक दोहे में इसका उल्लेख मिलता है। कहते हैं कि बीरबल के देहान्त के बाद अपने गंभीर खेद को अकबर ने इस दोहे में प्रकाशित किया था—

पीथल सों मजलिस गई, तानसेन सों राग।
हँसिबौ रमिबौ बोलिबौ, गयौ बीरबल साथ॥

इस दोहे के "पीथल" थे बीकानेर के कुमार पृथ्वीराज राठौर, जो डिंगल या पुरानी राजस्थानी के विख्यात कवि थे। अकबर के दरबार में बीकानेर की तरफ से कफील या शरीर-बंधक बनकर रहा करते थे और इन्होंने ही चितौड़ के महाराना प्रतापसिंह को अपना विख्यात पद्यमय पत्र लिख कर अकबर की अधीनता स्वीकार न करने की राय दी थी। जहांगीर की राज्य-प्राप्ति के बाद उनके दरबार में शामिल रहना, जो एक मोगल चित्र से दृष्टिगोचर होता है, संभवतः इन प्रमाणों के सामने, चित्रकार-कल्पना माननी पड़ेगी।

कहते हैं कि तानसेन के पिता का नाम था मकरंद पांडे। आप गौड़ ब्राह्मण थे। तानसेन ने वृन्दावन के हरिदास स्वामी के पास पहिले कविता-रचना और संगीत विद्या सिखी थी। फिर वे ग्वालियर के सूफी साधु मुहम्मद गौस के शागिर्द बने। मुहम्मद गौस एक विख्यात गायक भी थे। आप बाबर, हुमायूं और अकबर के समकालीन थे, और लोग आप पर बड़ी ही श्रद्धा करते थे। जिस समय गवालियर हिन्दुओं के अधिकार में था और तोमर-वंश के राजपूत राजा वहां शासक थे, तब से मुहम्मद गौस गवालियर में निवास करते थे। इन सूफी साधक ही की सलाह से बाबर के सेनापति रहीम-दाद मोगलों की तरफ से गवालियर को अपने कब्जे में ला सके। ऐसा सुनते हैं कि मुहम्मद गौस ने चेले तानसेन को गायन शक्ति देने के लिये अपनी जीभ से तानसेन की जीभ छुई थी और इसी करामत से तानसेन को असाधारण संगीत शक्ति प्राप्त हुई थी। १५६२ सन् में तानसेन अकबर के दरबार में आये, उसके बाद वे मुसलमान हो गये। तानसेन के इसलाम कबूल करने का इतिहास रहस्यमय रहा है। अकबर की प्ररोचना से मुसलमान बनना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभव नहीं था, क्योंकि अकबर इसलाम के संबन्ध में सदा के लिये उदासीन थे और अपने अंतिम जीवन में उन्होंने इसलाम को तो त्याग ही दिया था। तानसेन की रची हुई गीतों के भाव और उनकी भाषा देखकर ऐसा विश्वास करने की प्रवृत्ति नहीं होती कि वे भक्तप्राण हिन्दू के सिवा कुछ और थे। मुसलमानी भाव के कुछ गाने, जो कि तानसेन के नाम से संयुक्त हैं—उनमें खास करके इसलाम पर विशेष आग्रह का कोई भी परिचय नहीं मिलता। तो क्या उस्ताद मुहम्मद गौस से प्रभावित हो कर तानसेन अपने को मुसलमान तो नहीं कहने लगे थे? ऐसा अनुमित होता है कि मुहम्मद गौस हिन्दुओं के भी बहुत प्रिय हो गये थे। शरीफ और भद्र हिन्दू का सम्मान आप किया करते थे, इसलिये कुछ कट्टर मुसलमान उन पर नाराज होते थे यही इस बात का प्रमाण है। भारत में मुसलमान धर्म के फैलाने में मुसलमान पीर और फकीरों ने बहुत मदद दी थी, काररवाइयाँ की थीं, यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है। सूफी ढङ्ग के इस्लाम ने प्रत्यक्ष और परोक्ष भाव से, ज्यादातर परोक्ष भाव से, हिन्दुओं में इसलाम प्रचार के काम में सहायता दी थी। फिर यह भी हो सकता है कि अपनी जवानी में तानसेन मुसलमान रईस और राजघरानों के साथ घनिष्ठ रूप से बर्ताव करते थे, इसलिये ब्राह्मण की आचारशीलता से भ्रष्ट हो गये होंगे, और इसी कारण उन्होंने अपनी बिरादरी से अलग रहना भी उचित समझा होगा। कुछ काल के लिये बादशाह शेरशाह के पुत्र दौलत खाँ के विशिष्ट मित्र बनकर तानसेन ने आगरे के दरबार में निवास किया था। इन सब बातों के अलावा यह भी संभव है कि मुगलों की गवालियर-विजय के बाद तानसेन की बिरादरी के गवैये ब्राह्मण लोग जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये होंगे। जाति-की-जाति को या बिरादरी की बिरादरी को बलात्कार से अपने धर्म से छुड़ाकर मुसलमानी की ओर खींच लेना, भारत के मुसलमान विजय के इतिहास में कुछ नई बात नहीं थी। भारत के कुछ सुप्रतिष्ठित कलाकार जाति के लोग मुसलमान विजय के साथ ही साथ मुसलमान बनाये गये। जैसे कपड़ा बनानेवाले तंतुवाय जाति के लोग, जो मुसलमान होने के बाद "जुलाहे" कहलाये। बंगाल के चित्रकार जाति के लोग, तमाम उत्तर भारत के ठठेरे, कुम्हार, रंगरेज़, धुनिये, पत्थर के काम करनेवाले, इत्यादि। तानसेन के इस्लाम-ग्रहण करने के बारे में और एक बात सोचने की है। अबुलफजल की आईन-इ-अकबरी में जो छत्तीस गवैयों के नाम दिये गये हैं, उनमें पन्द्रह गवालियर के हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और गवालियर के ये उस्ताद गवैये या कलावंत अधिकतया हिन्दू-नामवाले मुसलमान हैं; जैसे खुद "मियाँ तानसेन", और उनके पुत्र "तानतरंग खाँ"; और "श्रीज्ञान खाँ", "मियाँ चाँद", "विचित्र खाँ" उनके भाई का नाम पूरी तौर से इसलामी था—"सुभान खाँ", "बीरमंडलो खाँ", "प्रवीण खाँ", "चाँद खाँ"। इससे हमारा संदेह होता है कि गवालियर-निवासी बहुत से ब्राह्मण—शायद तानसेन के गवैये घराने के—किसी सूरत से मुसलमान बन गये होंगे या जबरदस्ती बनाये गये होंगे, या किसी कारण अपनी ही ओर से मुसलमान-सम्प्रदाय में शामिल होना इनके लिये सहल हुआ होगा। और एक कारण भी सुना जाता है कि तानसेन ने किसी मुसलमान लड़की से प्रेम के कारण अपने धर्म को त्याग दिया था। एक असंभव-सी कहानी है। अकबर ने तानसेन को अपने दरबार में रखना चाहा, मगर अपने घमंड में मस्त उस्ताद कलाकार ने इनकार कर दिया; आखिर अकबर ने अपनी एक कन्या से तानसेन का ब्याह कर उन्हें प्रसन्न किया और तब से वे अकबर के दरबार को अलंकृत करने लगे, और शाही दामाद बनने के कारण मजबूर होकर उन्हें मुसलमानी माननी पड़ी। प्रेम के कारण तानसेन ने धर्मान्तर ग्रहण किया, यह इस कहानी के अनुसार कोई असंभव बात नहीं है पर इसका और कोई भी प्रमाण नहीं है। जो हो, मुहम्मद गौस का प्रभाव तानसेन के ऊपर विशेष हुआ था, ऐसा संभव मालूम पड़ता है। तानसेन की मृत्यु के बाद उनका देह गवालियर के विराट् पर्वत-दुर्ग के पादमूल पर मुहम्मद गौस के समाधि-मंदिर के बगल में खुले आँगन में समाहित हुआ। तानसेन की पत्थर की यह समाधि अब उत्तर-भारत के कलावंत गवैयों के लिये एक तीर्थ स्थान बन गई है; इस मजार में तानसेन की वफात के दिन बड़ा भारी जलसा होता है। संगीतनायक तानसेन की समाधि के पास इमली के पेड़ हैं, गवैयों में बड़े प्रेम के साथ इन पेड़ों के पत्ते चबाने की प्रथा चली आई है। इससे संगीत गुरु के आशीर्वाद से आवाज मीठी होती है—ऐसा विश्वास लोगों में है।

अपने नवयौवन के पृष्ठपोषक शेरशाह के पुत्र दौलत खाँ की मृत्यु के बाद तानसेन ने मध्यभारत के रीवाँ राज्य के बाँधो के राजा रामचाँद बघेले के आश्रय में बहुत वर्ष बिताया। तानसेन के बहुतेरे ध्रुपद गानों में "राजा राम" इस नाम से इनका यशोगान किया गया है। इन्होंने तानसेन का बहुत सम्मान किया था, द्रव्य भी बहुत दिया था। इतने में ही तानसेन की ख्याति चारों ओर फैली, और सूर-वंश के बादशाह ने आगरे में अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरबार में उन्हें बुला भेजा, पर तानसेन रीवाँ छोड़कर नहीं आये। थोड़े दिनों के बाद मुगल बादशाह हुमायूँ ने आकर पठान शेरशाह के वंशधरों को हरा कर उस राजवंश को ही विनष्ट कर दिया, और १५५६ सन् में फिर मुगल राज की प्रतिष्ठा की। पिता हुमायूँ के देहान्त के बाद अकबर अपने सिंहासन पर कायम हुए, और सन् १५६२ में जलालुद्दीन कुरची नामक एक मनसबदार को भेजकर रीवाँ से तानसेन को अपने दरबार में बुला लिया। इस बार तानसेन की आपत्ति नहीं मानी गयी। तानसेन का बाकी जीवन अकबर के दरबार ही में बीता। किसी समय अपने को मुसलमान-धर्मावलंबी स्वीकार करने के सिवा इसके बाद इनके जीवन में उल्लेखयोग्य और किसी घटना का पता नहीं चलता।

तानसेन तो गाने में अद्वितीय थे ही। कलावंत और संगीतकारों में भी तानसेन सम्राट् माने जाते हैं, पर कवि कहिये तो तानसेन कवित्व शक्ति में भी कुछ कम नहीं थे। जिस समय तानसेन जीवित थे, वह प्राचीन हिन्दी साहित्य का सब से गौरवमय युग था—खास करके हिन्दी काव्य-साहित्य का। उनके समसामयिकों में थे मालिकमुहम्मद जायसी और तुलसीदास, उनसे एक पीढ़ी पहिले के थे अन्ध कवि सूरदास। अकबर के दरबार में एक तरफ थी राजकीय भाषा फारसी—इसे मुगल या मुसलमानीराज की "पुशाकी" या बाहरी भाषा हम कह सकते हैं; और दूसरी तरफ थी देशभाषा, राज की भीतरी भाषा, "हिन्दी"। उस "हिदी" के उस समय तीन सुप्रतिष्ठित साहित्यिक रूप थे। पूरब में अवधी या कोसली, बीच में ब्रजभाषा और राजस्थान में डिंगल। दिल्ली की खड़ी बोली की कोई साहित्यिक प्रतिष्ठा अब तक नहीं हुई थी, पर खड़ी बोली से पंजाबी की मेलजोल बहुत थी। यह दिल्ली में और दिल्ली के आसपास मेरठ रोहिल खंड हरियाना कर्नाल अम्बाला प्रान्त में जनपद बोली के रूप में बोली जाती थी। कबीर जैसे संत और साधुओं के हाथ बननेवाले समग्र उत्तर-भारत के नये लोक-साहित्य में इस खड़ी बोली के रूप कुछ-कुछ दिखाई देते थे। अकबर की दो राजधानी आगरा और दिल्ली—खास करके आगरा—ब्रजभाषा के इलाके में शामिल थी, इस कारण उनकी सभा में ब्रजभाषा हिन्दी ही को पूरा स्थान मिला था। इसमें खुद बादशाह से शुरूकर सब काव्यरसिक दरबारी सज्जन कविता करते थे। अकबर और अकबर के बाद मुगलों की कई पीढ़ियों तक—ईस्वी अठारहवीं शती के द्वितीयार्ध तक—भारत के मुसलमान सम्राटों

२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये भारतीय भाषाओं में सिर्फ ब्रजभाषा ही घरेलू भाषा थी। जैसे इंगलैंड के नरमान-फ्रेंच बोलनेवाले राजघरानों की देशभाषा अंग्रेज़ी को अपनाने के साथ ही साथ, अंग्रेज़ी के लिये एक नया विरुद व्यवहृत होने लगा, अंग्रेज़ी केवल नरमानों से विजित अंग्रेज प्रजा की भाषा न रही, वरन् यह शाही ज़बान The King English बन गई, वैसे ही ब्रजभाषा हिन्दी लग भग १५५० ईस्वी से कम-से कम १०५० ईस्वी तक "बादशाही हिन्दी" के रूप में व्यवहृत होती रही। बादशाह अकबर स्वयं ब्रजभाषा में पद रचते थे; इनका नाम "अकबर" या "अकब्बर सगाई" रूप में कुछ हिन्दी या ब्रजभाषा के पदों में मिला है और ऐसे पद (दोहा, कवित्त) भी हैं जो अकबर के लिखे हुए माने जाते हैं। अकबर के सभासदों में राजा बीरबल, मीरजा अब्दुर्रहीम खाँन-खानाँ और बीकानेर के राजकुमार पृथ्वीराज राठौड़ हिन्दी (ब्रज और राजस्थानी) साहित्य के उच्चकोटि के कवि गिने जाते हैं।

गायक के रूप में अतुलनीय यश के अधिकारी होने के कारण कवि के रूप में तानसेन का यशोभाग्य जितना होने चाहिथे था उतना नहीं हुआ। संगीतज्ञ कलावंत तानसेन के अन्तराल में जैसे कवि और साधक तानसेन ढक गये हों। ऐसा होने का एक मुख्य कारण यह था कि तानसेन केवल कवि न थे—कविता की रचना इनका एक मात्र काम न था। दरबार, मजलिस या सभा में सुरलय के साथ पाठकर सभासदों की तारीफ़ या रसिकों के साधुवाद और राजा बादशाह प्रभृति भाग्यवानों से आर्थिक पृष्ठपोषकता प्राप्त करने के लिये बड़े-बड़े काव्य या छोटी-छोटी कविताओं की रचना करना तानसेन का पेशा न था। Lyric Poet याने गीति कविताकार और साथ-ही-साथ गवैये—इसके सिवा तानसेन और कुछ नहीं थे। वह स्वयं गीत की वाणी या शब्द लिखते थे, और सुर-बद्ध करके स्वयं गाते थे। श्रोताओं के समक्ष संगीतरस ही इन गीतों का प्रधान आकर्षण था। कवि और साहित्यिकों की मजलिसों से कलावंत गवैयों के जलसों में इन गीतों का प्रचलन अधिक था। पर ये गवैये ज़्यादातर तो थे सुर और तान के वैयाकरण फलतः काव्य रस उनके सामने गौण वस्तु था। इससे जान पड़ता है कि काव्य-सरस्वती अरसिकों के हाथों में पड़कर दुर्दशापन्न हुई। जो सचमुच कवि थे, ऐसे सहृदय जनों के चित्त को तानसेन के गीतों के काव्य-सौन्दर्य से आकृष्ट होने का अवसर नहीं मिला। तानसेन के सदृश जो साथ-ही साथ गायक और कवि थे ऐसे बहुतेरे कवियों की दशा ऐसी ही हुई थी। तानसेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समय के कवि और गायक बाबा रामदास और उनके पुत्र सूरदास (ये अंध कवि सूरदास से अलग व्यक्ति थे) और उनके पूर्व के और पश्चात् काल के समस्त कवियों और गायकों के संबंध में यह बात ठीक है।

प्रधानतया कवि के रूप में ख्याति या स्वीकृति न होने के कारण, अपने कवित्व-सौन्दर्य के कारण तानसेन के गीतों का प्रचार बाहर जितना होना उचित था उतना नहीं हो पाया। साहित्य-रसिक लोग और पुस्तक अनुलेखक या नक़ल-नवीस कबीर, सूरदास, तुलसी, बिहारीलाल, भूषण, मतिराम इत्यादि कविओं में उलझे रहे। इनके काव्यों की चर्चा में मस्त रहे। आध्यात्मिक भाव के गीत बनाने से भी तानसेन को कोई धार्मिक मर्यादा न मिली, जैसे कबीर, नानक, दादू आदि को। गवैया-सम्प्रदाय के बाहर दूसरे लोगों ने इधर कुछ सोच-विचार न किया। बाहर के लोग सिर्फ गवैये या उस्ताद तानसेन को पहचानते थे। केवल गायक तानसेन का सम्मान करते थे। पेशेवर या व्यवसायी कलावंत लोगों ने भी अपने गुरु तानसेन के गानों को अपने सम्प्रदाय ही में सीमित रखा। इसमें इनका कोई भी अपराध नहीं था। जहाँ तक मुझे पता चला है काव्य के विचार से किसी ने कभी तानसेन के गीतों का संग्रह प्रकाशित नहीं किया, परंतु उत्तर-भारत के कलावंत संगीत की जिस किसी पुस्तक को देखिये तानसेन के दो-चार गाने अवश्य ही मिलेंगे।

तानसेन के अनुरागिओं के लिये यह तो एक अच्छी बात है कि फारसी, हिन्दी, बंगला, मराठी भाषाओं के मध्ययुग के साहित्य के नियम के अनुसार अन्यान्य कविओं की भाँति तानसेन भी अपने गानों में अपना नाम जोड़ दिया करते थे। कवि के द्वारा अपनी रचना के अंत में अपना नाम देने की रीति को बंगला में "भणिता देना" कहा जाता है। ऐसी भणिताओं के सहारे तानसेन के गानों के संग्रह का श्रीगणेश किया जा सकता है। परन्तु ऐसा हो सकता है कि बाज कवियों के गीतों में भ्रमवश तानसेन की "भणिता" या छाप आ गई हो, और तानसेन के अपने गीतों की भणिता के स्थान पर दूसरे कवि की भणिता आ बैठी हो। इन सब बातों का विचार कर, तानसेन के गानों की वाणी की एक संग्रह-पुस्तक निकालना हिन्दी तथा भारतीय साहित्य के लिये एक महत्त्व-पूर्ण काम होगा। सग्रह मुख्यतया काव्य की दृष्टि से करना चाहिये। तानसेन द्वारा रचित छपे हुए पद यथेष्ट मिलेंगे, इनके आधार पर इस काम का प्रारंभ हो सकता है। सन् १८४३ ईस्वी में कलकत्ते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मुद्रित और वहीं से प्रकाशित कृष्णानन्द व्यासदेव के बृहत् संगीत-संग्रह-ग्रंथ "संगीत-राग-कल्पद्रुम" में तानसेन की भणिता के अनेक पद मुद्रित हो गये हैं। इस महाग्रंथ का द्वितीयसंस्करण सन् १९१४—१९१६ में मुर्शिदाबाद लालगोले के राजाबहादुर स्वर्गीय योगेन्द्रनारायण के अर्थव्यय से वंगीय साहित्य परिषत् द्वारा प्रकाशित हुआ। सन् १८८५ ईस्वी से कृष्णधन वन्द्योपाध्याय के रचित गीत सूत्र सार से शुरू कर बंगला, हिन्दी, मराठी आदि विभिन्न भारतीय भाषाओं में संगीत के विषय में जितनी पुस्तकें निकली हैं प्रायः उन सबों में तानसेन के गाने दिये गए हैं। इसके अलावा जो "खानदानी" कलावंत होते हैं, पीढ़ी-दर-पीढ़ी जो कलावंत की वृत्ति का पालन कर रहे हैं उनके कंठ में और उनके घर की दस्ती किताबों में तानसेन के अप्रकाशित गाने मिलेंगे। पश्चिम बंगाल के पुराने शहर विष्णुपुर के विख्यात खानदानी संगीतज्ञ, आधुनिक भारत के अन्यतम प्रमुख ध्रुपदी संगीत-नायक संगीताचार्य श्री गोपेश्वरजी वन्द्योपाध्याय हैं। तानसेन के वंशजों में से एक गवैया बहादुरसेन या बहादुर खां सन् १७१० में बंगाल के विष्णुपुर में आये थे, आप उन्हीं की शिष्य परंपरा के अन्तर्गत हैं। इनके द्वारा लिखी हुई संगीत संबंधी बंगला पुस्तकों में तानसेन के गाने स्वरलिपि के साथ दिये गए हैं। इस प्रसंग में कई साल हुए कलकत्ते से प्रकाशित—इस समय दुष्प्राप्य—ध्रुपद भजनावली नाम की बंगला अक्षर में छपी हुई एक पुस्तक का उल्लेख होना चाहिये। उत्तर-बंगाल रंगपुर के वकील बाबू रामलाल मैत्र ने अपने संगीत-शिक्षक बनारस से बंगाल में आये हुए शिवनारायण मिश्र से बहुत ध्रुपद गाने सीखे थे। शिवनारायण मिश्र काशी के एक विख्यात ध्रुपदी नायक वख्त्यार सिंह के, जो कि तानसेन के घरानों के कहलाते थे, शिष्य थे। "अमृत बाज़ार पत्रिका" के अन्यतर संस्थापक स्वर्गवासी शिशिरकुमार जी घोष के आग्रह से रामलाल बाबू ने "ध्रुपद भजनावली" में शिवनारायण मिश्र से प्राप्त हुए ३७१ ध्रुपद गानों की वाणी प्रकाशित की थी, जिनमें १८० से अधिक तानसेन के हैं। बँगला लिपि में हिन्दी या ब्रजभाषा से अनभिज्ञ बंगाली नक़लकार तथा मुद्रक के हाथों से मूलवाणी की जो दुर्दशा हुई है, वह अवर्णनीय है; तो भी यह पुस्तक तानसेन के गानों के संबंध में विशेष मूल्यवान् है।

प्राचीन काल के अन्यान्य मुख्य हिन्दी कवियों की भाँति तानसेन ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी ब्रजभाषा का उपयोग किया था। ब्रजभाषा मुख्यतः ब्रजमंडल अर्थात् मथुरा के आस-पास के प्रांतों की कथित भाषा या बोली है। बंगाल के बैष्णव पदों में बंगला और मैथिल के मिश्रण से "ब्रजबोली" नाम की जो कृत्रिम साहित्यिक भाषा मिलती है, वह मधुर वृन्दावन की इस ब्रजभाषा से बिलकुल दूसरी चीज़ है। ब्रजभाषा में एक लक्षणीय साहित्य है। यह भाषा बहुतेरे कवि और गद्य लेखकों की कृति से भरपूर है। उत्तर-भारत की आधुनिक-नव्य-आर्यभाषाओं में, अपने श्रुति-माधुर्य तथा गांभीर्य के कारण ब्रजभाषा का सौन्दर्य और उसकी शक्ति अतुलनीय है। गीति कविता के लिये यह भाषा विशेषतया उपयोगी है। हम ऊपर कह चुके हैं कि तानसेन के समय में दिल्ली मेरठ की खड़ी बोली साहित्यक भाषा नहीं बनी थी। हिन्दुस्थान की भाषाओं में केवल ब्रज, कोसली और डिंगल भाषाएँ साहित्यिक मानी जाती थीं। तानसेन की ब्रजभाषा मध्ययुग की ब्रजभाषा है, उस समय भारत की आर्य बोलिओं में स्वरध्वनि की बहुलता थी; ब्रजभाषा भी इस स्वर-बहुलता के कारण (इसके सब शब्द स्वरांत होते थे) विशेषतया श्रुति-मधुर भाषा है। गानों के लिये तो इस का खास गुण है। गानों में जब लाई जाती है तब ब्रजभाषा के उच्चारण के कुछ विशेष ढंग कहीं-कहीं आ जाते हैं। ये विशिष्ट ढंग कम-से-कम गाने की कुछ शैली में सुन पड़ते हैं। एक विशेषता तो यही है कि अनुनासिक वर्णों के बाद उस अनुनासिक वर्ण के अपने वर्ग के स्पर्श वर्ण (वर्ग के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ) आने से, इस अनुनासिक-संयुक्त वर्ण के पूर्व के अक्षर में अ-कार रहने से, वह अ-कार औ-कार-सा उच्चारित होता है। जैसे "पंकज, संख, गंग, अंघ्रि, पंच, अंजत, झंझ, कंठ, मंडल, अंत, पंथ, चंद, सुगंध, कंप, अंब, अंभ" इत्यादि शब्द "पौंकज, सौंख, गौंग, औंघ्रि, पौंच, औंजन, झौंझ, कौंठ, मौंडल, औंत, पौंथ, चौंद, सुगौंध, कौंप, औंब, औंभ" सुनाते हैं। गाने के समय इससे सानुनासिक संयुक्त वर्णों में कुछ विशेष श्रुति-माधुर्य आ जाता है। इसके बाद शब्दों के अंत में अ-कार रहने से वह अ-कार कभी-कभी अर्धोच्चारित उ-कार-सा हो जाता है।

तानसेन के पदों की तथा समकालीन दूसरे अनुरूप हिन्दी कविओं की भाषा का एक लक्षणीय वैशिष्ट्य यह है—भाषा का संक्षेप या संकेतमय रूप में भाषा का प्रयोग। व्याकरण के अनुसार शब्द तथा धातुओं के साथ सुप् और तिङ् प्रत्यय जोड़कर वाक्य स्थित "पद" बनाये जाते हैं; पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्य युग की हिन्दी कविता में मानों प्रत्ययों का यथासंभव बहिष्कार किया जाता था। जहाँ अनुसर्ग और प्रत्यय न रहने से अर्थग्रहण होना कठिन होता है, सिर्फ वैसे ही स्थानों में इनका पूरा प्रयोग होता है, अन्यथा नहीं। नाम-पदों के प्रातिपदिक रूप और धातु का एक अकारान्त रूप—इन्हीं से जहाँ तक हो सके काम लिया जाता है। वाक्यों ये में अधिकतया मिलते भी हैं। केवल एक के बाद दूसरे बिठाये गये मूल शब्द, या समस्त-पद, या धातु; ये सब पृथक् अवस्थित विभक्ति-प्रत्यय-विरल शब्द भरकम होते हैं. इनके द्वारा कुछ खास शक्ति का प्रकाश आ जाता है, भाषा में एक प्रकार की वाचंयमता के साथ जमावट आती है। तानसेन के गानों में अकसर ऐसे शुद्ध भरकम शब्दों का प्रयोग होता है, इन शब्दों को केवल सुनने से ही हमारे चित्त पट में चित्र के बाद चित्र अंकित हो जाते हैं।

तानसेन के पद ध्रूपद गाने के अस्थायी,. अन्तरा, संचारी और आभोग इन चार अंशों का आश्रय लेकर चार खंडों में विभक्त होते हैं। पदों के छंद साधरण तथा दीर्घ होते हैं, चार छत्रों के बड़े-बड़े हिन्दी छन्द तानसेन के पदों में मिलते हैं; फिर चार छत्तों में विभाजित गद्य भी मिलता है।

विशेष करके ध्रूपद गाने के लिये ये सब पद या गीत रचे हुए हैं। तानसेन की काव्य सरस्वती की स्वच्छन्द और सावलील स्फूर्ति के लिये यह एक कठिन अंतराय के रूप में खड़ा है। इधर पद का बाह्य रूप निगड़ित है, ऊधर विषय-वस्तु भी सुनिर्धारित है। ध्रूपद गीत के विषय केवल ये ही हो सकते हैं। परब्रह्म या परब्रह्म के ध्यान ग्राह्य स्वरूप शिव, देवी, विष्णु, राम कृष्ण, सूर्य, गणेश इत्यादि हिन्दू पौराणिक देवताओं का महिमाकीर्तन, उनके रूप और उनकी लीलाओं का वर्णन। प्रकृति-वर्णन, विशेषतया विभिन्न ऋतुओं का वर्णन; संगीत का महिमाकीर्तन; राधा-कृष्ण अथवा साधारण नायक-नायिका का विरह-मिलन, अभिसार आदि अवस्था में प्रेम-वर्णन एवं राजाओं के महत्त्व या गौरव का वर्णन। तानसेन और दूसरे कवि के मुसलमानी मज़हब के मुताबिक ध्रूपद के कुछ पद मिले हैं; इनमें अल्लाह की स्तुति और गुण-वर्णना और नबी मुहम्मद और मुसलमान पीर या साधकों के गुण वर्णन—ये सब पाये जाते हैं। ध्रूपद गाने में व्यवहृत शब्द प्रायः सब-के-सब पुरानी हिन्दी और संस्कृत के होते हैं। तानसेन के समय अरबी-फारसी शब्दों से लदी हुई उर्दू का उद्भव नहीं हुआ था। पर कुछ मुसलमानी मत के पोषक पदों में उस मत के आवश्यक कुछ कुछ अरबी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फारसी नाम और अन्य शब्द प्रयुक्त होते थे।

यह मानना पड़ेगा कि ध्रूपद रीति के पदों मे कवि की कवित्वशक्ति के पूर्ण प्रकाश के लिये कुछ लक्षणीय बाधायें थीं। तो भी, तानसेन एक प्रथम श्रेणी के प्रतिभावान् कवि थे, यह बात बंधनों के बीच उनकी वाणी के सौन्दर्य से प्रमाणित होती है। ध्रूपद में किसी एक प्रकार का धीरोदात्त और स्निग्धगंभीर भाव विद्यमान है; इसकी गठन शैली होती है विराट् वास्तु-शिल्प की सी, परस्पर-ग्रथित और सुसंबद्ध। इस वास्तुशिल्पानुरूप गुण के कारण तानसेन के ध्रूपद गीतों में एक उच्च कोटि की महिमा, एवं एक शुद्ध-संयत भाव आ जाता है, जो कि उनकी रचना-शैली की उदारता, उसके आभिजात्य एवं उनके शब्द चयन की शक्ति से और भी पुष्ट और भी समृद्ध और भी उद्भासित हो उठते हैं। देवताओं की स्तुति में या इनकी महिमा के कीर्तन में विशेषण और नाम-शब्दों का प्रयोग तानसेन ने अपने पदों में किया है, ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें कोई आदमी या मौलिक महत्त्व और विशालत्व भरा हुआ है। दृष्टांत के रूप में पर-ब्रह्म, शिव या विष्णु विषयक कुछ पदों का उल्लेख किया जा सकता है। पंखिओं के गाने और दक्षिणी पवन के साथ वसन्त ऋतु का आनन्दमय रूप, पूरबी बयार, बादलों की घटा, बिजली की चमक, मेघगर्जन और वारि-पात के चित्र, मोहक स्निग्ध ध्वनि के साथ वर्षा ऋतु, विश्वप्रकृति को ज्योति से उद्भासित कर उषःकाल में सूर्योदय, हिमालय की गोदी में ध्यान-मग्न योगीश्वर धूर्जटी महादेव, श्री के साथ महासागर पर अनन्तशायी महा-विष्णु, राधा और कृष्ण की शाश्वत अनैसर्गिक प्रेमलीला—भारतीय काव्य-साहित्य में महियमय तथा माधुर्यमय जो भी कुछ हो,

was reizt und entzueckt,
was saettigt und naehrt,

उन सबों से तानसेन के पद मानों भरपूर हैं। प्राचीन और मध्ययुग के हिन्दू काव्य, ज्ञान, योग और भक्ति का मानों मंथन करके जो नवनीत निकला, वह तानसेन के पदों के स्वर्ण कटोरे में धर दिया गया है। ध्रूपद की वाणी तथा अन्य कविओं के नायक-नायिका और राग-रागिणी की वर्णना के पद—इनमें प्राचीन राजपूत और मोगल शैली के चित्रों की कवि-तामय व्याख्या या टीका पाई जाती है। ये दो वस्तुएं भारत के काव्योद्यान के दो अनिन्द्यसुन्दर सौरभमय पुष्प हैं। ऋग्वेद के ऋषिओं के समय से शुरू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर भारत की प्राचीन तथा मध्ययुग की कवि-परंपरा के बीच तानसेन का आसन सुतरां गौरवमय है।

तानसेन राजसभा के कवि थे। जगत् के इतिहास में श्रेष्ठ महामानव सरीखे जो राजा थे उनमें से अन्यतम सम्राट् अकबर के उपयुक्त सभासद् और सभागायक थे। राजसभा के कवि और गुणी होते हुए भी, तानसेन की काव्य-वस्तु देश के जन-साधारण या जनता की अनुभूति के बाहर की नहीं थी; राजा की सभा में बैठकर उन्होंने जो पद बनाये, जो गीत गाये, उनसे पंडित और अभिजातजन, वणिक और योद्धा, दीन ग्रामीण कृषक और शिल्पी, सब श्रेणी के मानवों के अन्तरतम व्यक्तित्व का संयोग था।

"आविर् अकृत प्रियाणि"

जो कुछ हमारे प्रिय हैं, जो हमें सुहाती हैं, उन्हें सर्वजन समक्ष उन्होंने प्रकाशित कर दिया है, नये तौर से उन्हें आविष्कृत कर दिया है। अपने काव्य और संगीत की आलोक-धारा से उन्हें परिस्फुट कर दिया है। तानसेन की कविता ने भारत के जातीय चित्त से रस पीकर अपने रूप को विकसित कर दिखाया है।

तानसेन के नाम से संयुक्त जो पद या कविता मिलती हैं, वे खंडाकार में विक्षिप्त रूप से ही मिलती है; परम्परागत या क्रम-विकाश के अनुसार उनकी सजावट अब असम्भव-सी दीखती है। रामलाल मैत्र महाशय द्वारा संकलित "ध्रुपद-भजनावली" पुस्तक की भूमिका में कहा गया है कि तानसेन का व्यक्ति-जीवन तीन पर्याय या विभाग में विभक्त किया जा सकता है। पहिला विभाग यौवन का है। इस समय इन्होंने अपने मित्र और पोषक राजाओं के गुणगान किये हैं और ऋतु प्रभृति प्राकृतिक वस्तु के वर्णन ज्यादातर किये हैं। दूसरा विभाग प्रौढ़काल का है। इस अवस्था में आप देवताओं की लीला और महिमा गाते थे, इस श्रेणी के पदों में ऐश्वर्य-बोध तथा अन्तर्दृष्टि दोनों ही मिलती हैं, पर गंभीर आत्मानुभूति नहीं दीख पड़ती। तीसरे विभाग में अपने परिणत वय और वार्धक्य की कविताओं में तानसेन राधाकृष्ण लीला का वर्णन कर गये हैं। राधाकृष्ण-विषयक ये पद भावगांभीर्य तथा भक्ति के गभीरत्व में अतुलनीय हैं। परन्तु ऐसा पर्याय-विभाग पूर्णतया समालोचक की अपनी ओर से की हुई वस्तु है, तानसेन के पदों में ऐसे किसी ऐतिहासिक क्रम का निरूपण करना अब असंभव है।

सरल और अकपट विश्वास और प्रीति के कारण तानसेन के विनय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् प्रार्थनात्मक पद अपने ढंग के अतुलनीय हैं। उनके धार्मिक पदों में हमें एक तात्त्विक, मर्मज्ञ और भक्त व्यक्ति से साक्षात्कार होता है। अपनी जातीय संस्कृति के मुख्य वस्तु और सिद्धान्तों से सुपरिचित और उनके संबंध में श्रद्धावान् और आस्थाशील एक यथार्थ ब्राह्मण का भी परिचय तानसेन के पदों से होता है। शिव, पार्वती, विष्णु, लक्ष्मी, सरस्वती, सूर्य, गणेश प्रभृति की महनीय और विराट् कल्पना की अन्तर्निहित गभीरचिन्ता, ज्ञान और उपलब्धि, कविदृष्टि और सौन्दर्यबोध—इन सबों में कोई भी उनके दर्शन से छिप नहीं सका। वेद और उपनिषद् से, रामायण, महाभारत, पुराण और तंत्र, और मध्य-युग के साधु और संतों के भक्तिवाद इन सबों में जो ज्ञान, जो सत्यदृष्टि, जो प्राण और जो रससृष्टि है, तानसेन उन सबों के उत्तराधिकारी हैं। तानसेन के ध्रूपद सुनने से सुननेवाले के मन में प्रार्थना और आत्मनिवेदन के दिव्यभाव की जागृति होती है, यह भी देखा गया है।

किसी देवमन्दिर में देवविग्रह के समक्ष, अथवा मित्रगोष्ठी में या रसिक समाज में, ज्योत्स्ना-विधूत रात्रि में सौध-शीर्ष पर, अथवा उद्यान के चबूतरे पर, नक्षत्रखचित रजनी में नदी या किसी विराट् जलाशय की तीर-भूमि पर, या किसी आश्रम या कुंजवन में बैठ कर सुनना, ध्रूपद गाने के लिये सब से उपयोगी पारिपार्श्विक होते हैं। बाणभट्ट की कादम्बरी में, अच्छोद सरोवर के तीर के शिवालय में विरहिणी कुमारी महाश्वेता की वीणा के साथ गान करने का अति मनोहर चित्र वर्णित है। महाश्वेता के कंठ से शिव की महिमा वीणा-वादन के साथ जिस संगीत रीति से गीत हुई थी, वह इस समय से सहस्र वर्ष पूर्व के ध्रूपद संगीत के सिवा और क्या हो सकता है? दुष्यंत की रानी हंसपदिका ने अपने "सकृत्कृतप्रणय" पति के चित्त में प्रणय के पुनराविर्भाव की आशा से वीणा बजाती हुई जो 'कलविशुद्धा' 'रागपरिवाहिनी' 'गीति' का गान किया था वह भी ध्रूपद के किसी कोमल राग के प्राचीन रूप का प्रकाश रहा होगा। वैसे "मेघदूत" की विरहिणी यक्ष-पत्नी वेदनातुर हृदय से वीणा बजाने की चेष्टा करती हुई निर्वासित पति के स्मरण में जो पद गाती थी, गाने के बीच में अपनी रची हुई मूर्छना को भूल जाती थी, वह पद कालिदास के समय के ध्रूपद के सिवा और क्या रहा होगा? ईश्वर की जो स्तुति निसर्ग की सुन्दर वस्तु और सुश्राव्य ध्वनिनिचय द्वारा प्रतिदिन ध्वनित हो रही है, हिमालय की अरण्य-संकुल उपत्यकाओं में शुषिर वंश दंडों के मध्य से प्रवाहित होकर वायु जिस वंशी-निःस्वान को मुखरित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर जाता है, पर्वत की गुहाओं में प्रतिध्वनि जगाकर मेघों के गुरु गर्जन से जो मृदंग मंद्रित हो रहा है, अदृश्य किन्नरिओं की कंठध्वनि से सम्मिलित होकर प्रकृति के उस शिवमहिम्नस्त्रोत्र का गान, मानों इस ध्रुपद-संगीत में ही कदाचित् प्रकाशित होता है। और राधा के लिये युग-युगान्त से श्रीकृष्ण की वंशीध्वनि, श्रीकृष्ण के लिये राधा की शाश्वत अभिसार-यात्रा इन सब का भी आभास ध्रुपद-में ही प्रतिध्वनित होता है।

रोमन-काथोलिक धर्म की सब से मनोहर और गांभीर्यपूर्ण पूजापद्धति देखने के अवसर मुझे मिले हैं। अपने हिन्दू धर्म की अपूर्व श्री शोभा मंडित बहु पूजा-पाठ और यज्ञादि अनुष्ठान मैं देख चुका हूँ। नाना प्रकार की पाठ-पद्धति श्रद्धा के साथ मैंने सुनी है—काशी में, पुरी में, दक्षिण के तमिलदेश के तीर्थों में, अन्य क्षेत्रों में। साधारणतः इन सब पूजा-पाठ के आभ्यन्तर सौन्दर्य और महत्त्व ने मुझे मुग्ध किया है। परंतु विशेष करके मेरे मन में उदित हो रही है, उदयपुर राज्य में एकलिंग जी के मन्दिर के एक दिन की भोर की पूजा की स्मृति। गैरिक वसन पहने हुए गले में और हाथों में रुद्राक्ष की माला लगाये हुए तेजःपुंज कलेवर गौरवर्ण दीर्घकाय श्मश्रुमान् एक संन्यासी पुजारी, अति सुन्दर शुद्ध उच्चारण के साथ मंत्र पढ़कर भगवान् की पूजा कर रहे थे; बीच-बीच में पूजा के बीच में गर्भगृह के द्वार बंद किये जाते थे; इधर अलंकरण-मंडित प्रस्तरमय देवमूर्ति के सामने के नाट्य मन्दिर में एक कलावंत गायक पखावज और सारंगी बजैये के साथ बैठे थे। पूजा के लिये जब देवगृह के दरवाजे बन्द होते थे तब वे शंकर की स्तुति के लिये एक ध्रुपद चौताल गाने में लग जाते थे। कुल मिलकर पूजा का जो अपूर्व वातावरण बना, भाषा में उसका क्या वर्णन करूं। पूजा समाप्त होते समय पुजारी के शेष मंत्रों में एक की ध्वनि ने मानों समग्र अनुष्ठान के संबंध में अन्तिम वचन सुना दिया। इस मंत्र के श्लोकों का सम्पूर्ण रूप से स्मरण में रख नहीं सका। परन्तु एक श्लोक का अंश कुछ ऐसा था—

"शिवे भक्तिः शिवे भक्तिर्भक्तिर्भवतु मे सदा।"

तानसेन के ध्रुपद की कविता के एकमात्र उपयोगी चित्रमय प्रकाश हम राजपूत और मोगल-चित्रों में देख पाते हैं। ये सब चित्र और तानसेन की कविता, ये दोनों परस्पर की पूर्ति करनेवाले हैं। ध्रुपद गानों के लायक पारिपार्श्विक या दृश्यों से ऐसे चित्र परिपूर्ण होते हैं। राजपूत शैली के रागमाला चित्रों को "दृश्यमान संगीत" आख्या दी गई है और यह आख्या सार्थक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्वतराजकुमारी उमा अकेली या सखी सहित अरण्यमय गिरिपार्श्वदेश में गंभीर निशीथ में शिवपूजा कर रही हैं। संगीतकार, वादक और योगी मिलकर नदी-तट पर किसी आश्रय में बैठे आलाप कर रहे हैं। शरत्काल के प्रभात रौद्र में अचिरस्नाता पूजानिरता कुमारी चित्रित है। इस प्रकार वह चित्र ध्रुपद गानों को सुन्दर रूप से प्रकाशित करते हैं।

तानसेन के कुछ पद उद्धृत करके मैं इस निबंध का उपसंहार करूँगा। अधिकतया ये पद बंगाल के गवैयों में प्रचलित पाठों से उद्धृत किये गये हैं। पाठ में कुछ भूल-भ्रान्ति रह सकती है, विशेषज्ञ पाठक गण कृपा कर संशोधन कर लेवें। उषा-संपर्कित पदों में वैदिक उषा-विषयक सूक्तों की प्रतिध्वनि पाई जाती है। इन कविताओं से तानसेन के कवित्व-माधुर्य का अनुभवी पाठक आस्वादन कर सकेंगे।

[१] सूर्योदय। राग ललित-भैरव। ताल चौताल॥

हेम-किरीटिनी उषा देवी कनक-बरनी सविता-गेहिनी।
उदत मधुर हास जग हसायौ।
सिन्धु-बाटि उदत भानु, बिमल सोह जैसे मानौं।
दिसा-नायरी कनक-गागरी पानी भरि भरि मङ्गल अस्नान करायौ।
विहग मधुर ललित तान गावै, भुवन नव जीवन।
आनँद-मगन सब जग-जन मङ्गल-गीत गायौ।
आयी उषा कवँल-नेत्री, गायत्री, जगधात्री, लै कै।
अरुन-किरन-मञ्जन तानसेन-मानस-तामस दूर लियौ॥

[२] शिव। राग भैरव। ताल धीमा तिताला॥

महादेव महाकाल धूरजटी सूली पञ्चवदन प्रसन्न-नेत्र।
परमेश्वरपरात्पर महा-जोगी महेश्वर परम-पुरुष प्रेममय परा-सान्तिदाता।
सरिता-गन भिन्न भिन्न पन्थ जैसे आवत, सिन्धुवा पाइ रहत मगन—
तानसेन कहै—तैसे भगत भिन्न भिन्न मूरति उपासत ए मही बमूह आवत॥

[३] सूर्योदय। रागिनी ललित। ताल चौताल॥

गगन-मंडल-मध्यउदयाचल-परअष्ट-बाजी कनक-रथ मेंअरुन सारथिहोत,
प्रिया उषा सवेँ अरुन-बरन रङ्गी बसन पहिरि भानु उदत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गगनाङ्गन अँधार-धूरिया किरन-मञ्जन दूर लिया; हुल्लास प्रकृति हँसत अमिश्रा, विचित्र भूषन मोहन साजत।
कानन-कुन्तल नीहार-बूँदन जड़ित, मुकुता-माल मानौं, सिन्धु निचोल, अचल मेखला, नितम्ब धरन बिसाल।

बाला के सिन्दूर-बूँद भाल, ग्रह-उड़-सप्तऋषि-मण्डल सोहन; प्रकृति सोह निहारि तानसेन प्रान मतावत॥

[४] नारायण के प्रति। विनय। रागिनी भैरवी। ताल चौताल॥

अन्तकाल कृपा करो। हिआ-पर ठाढ़ौ हरि कवँल-नैन, कवँला-पति, मुरली अधर, ललित-मधुर, बङ्किम भइ बङ्क-बिहारी।

बदन खीन, इन्द्रिय-हीन; पाप सुवँरि सुवँरि अस्थिर प्रान; निरासा प्रबर, विश्व अँधार; गेह छोड़ि प्रान जात हरि। विषय आपद, सुख सम्पद धन जन दारा बाँधव सुत सब-कौ छोड़ि चलिहौं, एक करम अब सङ्गि रहियौ।

पतित-पावन प्रभु जनार्दन, पतित दीन तानसेन; विश्व मोहन, पारगामी प्रान, आस्रय दीजै, गोलोक-बिहारी॥

[५] सूर्यास्त। रागिनी सावरी। ताल चौताल।

जगत-जीवन सविता-देव अस्ताचल-में जात, अँधार जगत मोहित होके मोह माया-में सुपत।

पसु-पंछी कलरव कर जात सब आपे कौ भवन भये रहन गुपत।

प्रकृति स्तब्ध मुगध, मोह-जाल नर-नारी-जीव-जन्तु अचेतन होत, आवत नींद सरन।

तानसेन-प्रभु कृता-निदान जगत-कारन, अज्ञान-तम-सों जात लुपत॥

[६] विनय। दरबारी तोड़ी। ताल चौताल।

प्रान मेरौ ही रोवत है विरह प्रान-वल्लह निस-दिन; हे हरि, सरनागत दीन-कौ दरसन काहे न मिल।

ढूँढ़ि हिर्द न पावै निधि, या विधि तेरी विधि; हिर्द-नाथ, दीन-नाथ, कौन गति कौन मेरे अपराध-के फल।

सून प्रान, सून मन, सून हिर्द आसन; अँधार भयौ विस्व-संसार, हे नाथ। तानसेन विनती करत—आइ हिर्द जगन्नाथ मरुभूम प्रेम-वारि बरखि प्रान कीजै सीतल॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[७] परमेश्वर-स्तुति। रागिनी अलैया। ताल चौताल।

जगत-जीवन हौ प्रभु, भगत-बच्छल तूँ ही भगवान; भगत-हिअ-पङ्कज-राज अचल-राज राज-राजेश्वर अगन-भुवन-पालक।

तूँ ही माता, तूँ ही पाता, तूँ ही धाता बान्धव; तूँ ही प्रिय प्राना-राम, तूँ ही सान्ति, सुख गति, मोछ-भक्ति-दाता ब्रह्म तारक।

प्रान-बल्लह, बहुबल्लह—तानसेन-कौ एक बल्लह; माया-मोह-मुगध चीत संसार ताप तपत; सान्ति दाता, दीजै सान्ति दीन-कौ ॥

[८] बसन्त। रागिनी हिन्दोल। ताल चौताल।

सरस सुन्दर ऋतुराज बसन्त आवत भावन, कुञ्ज कुञ्ज फूलि फूलि भवँर गूँज, कोयिल पञ्चम गान मतावै नर-नारी।

कानन कानन फूटत चमेली, बकुल गन्धराज बेली, मोतिया गुलाब सुगन्ध मनोहारी ॥

पवन चलत मन्द मन्द बिछुड़ि गन्ध चहुँ दिस; गुञ्जन झनन नाद पञ्चम पूरत सबहूँ बन-भुव।

रति-पति भज जुवक-जवती, नाचत गावत हिन्दोल माति; गोविन्द-मङ्गल तानसेन गायौ री ॥

[९] वर्षाऋतु। राग मल्हार। ताल चौताल ॥

बादर आयौ री, बाल पिअ बिन लागइ डर पावन।
एक तो अँधेरी कारी, बिजुरी चवँकत उमड़-घुमड़ बरखावन।
जब-तें पिया परदेस-गवँन कीनौ तब-तें बिरह भयौ मो तन-तावन।
सावन आयौ, अत झर लावन; तानसेन प्रभु न आवै मन-भावन ॥

[१०] उमा की शिवपूजा। राग भैरव। ताल चौताल ॥

चन्द्र-बदनी मृग-नयनी हँस-गवँनी चली है पूजन महादेव।

कर लिये अरघ-थार पुहपन-के गूथे हार, मुख दियरा जराए देवन-में देव महादेव।

सोलह सिङ्गार बतीसौ अभँरन सज नखसिख सुन्दरताई छबि, बरनी न जाइ, है निरमल मञ्जन कर सेव।

तानसेन कहै—धूप दीप पुष्प पत्र नैवेद्य लै ध्यान लगाय हर हर हर आदि देव ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[११] विरह । रागिनी विहाग । ताल चौताल ॥

साईं, तूं न आवै आज, आधी रात (आँधी रात), माझ माझ सिंहनी जगावै सिंह कानन पुकार ।

चन्दन घसत घसत घस गये नख मेरे, बासना न पूरत माँग-को निहार।

धिक जनम मेरे, जग-में जीवन मेरे विमुख लगावै नाथ पकरि वेनु बार बार ।

हौं जन दीन अति नयन-हू बारि बहै; तानसेन-अन्तर-बानी ध्रुरुपद पुकार ॥

[१२] विरह । राग विलावली । ताल चौताल ॥

तन-की ताप तब ही मिटैगी मेरी, जब प्यारे-कौ दृष्टि-भर देखौंगी ।
जब दरस पाऊँ प्रान-प्रीतम-कौ, जनम जीतव सफल अपनौ लिखाऊंगी।
अष्ट जाम मोहि-कौ ध्यान रहत वा-कौ, आली-कौ ले भेटौंगी ।
तानसेन प्रभु कोऊ आन मिलावै, ता-के पावन सीस टेकाऊंगी ॥

पामरो का संकेत क्या ?

[श्री चन्द्रबली पाण्डेय, एम० ए०]

पुरातत्त्व के विद्वानों ने भारत के प्राचीन इतिहास के निर्माण में प्राचीन कवियों के काव्यों से कितना काम लिया है इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं; रोना तो यहाँ इस बात का है कि हमारे मध्यकाल के इतिहास लेखक हमारे हिन्दी कवियों को फूटी आँख से भी नहीं देखते; बहुत हुआ तो इतना अवश्य करते हैं कि उनका उल्लेख कर चलता बनते हैं और बताते बस इतना ही हैं कि उसमें कुछ सार नहीं । वह तो कवि की कल्पना अथवा चाटुकारिता भर है। परिणाम यह हो रहा है कि हमारा इतिहास खूनी और अधूरा रह गया है और भली भांति किसी प्रकार खुल कर हमारे सामने भी नहीं आता । प्रमाण के लिये हम यहाँ हिन्दी के कठिन कवि केशवदास का एक छोटा-सा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं और जानना चाहते हैं कि इतिहास की दृष्टि से इसमें कुछ तत्त्व है या नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छा तो केशवदास का कथन है—

रामदास सौं करि यहु येहु, कोऊ एक बिदा कर देहु।
देखैं जाय ओड़छौ ग्राम, ल्यावैं बोलि वेगि संग्राम।
भीतर भवन गये तिहिं घरी, पहिरावनि पठई पामरी।
रामदास सारौ आपनौ, पटै दियौ अपनी प्रति मनौ।
कहैं साहिआलम रिसि भरौ, बहुत गुनाह बुँदेलनि कर्यौ।
माड़ौ लात पै खाली देस, मेरे सुत कौ भयौ प्रवेस।
बहुत बुँदेलनि बढ़्यौ प्रभाव, करिहैं साहि सलैम सहाव।
रोम उठ्यौ मेरे मन महा, इन्द्रजीत कौं कीजै कहा।
बोल्यौ असरफखां चित चाहि, घालै आज बुँदेलनि साहि।
विमुखनि कौ कीजै कुल नास, पद सनमुखनि बढ़ावत आस।
अर्ज मेरी यह मानिये आज, इन्द्रजीत को दीजै राज।
रामदास सौं कह्यौ बुलाइ, करौ नवाजिस बाकी जाइ।
सुभ दिन होइ तो चेला करौ, चेला करि विपदा सब हरौ।
यह कहि साहि झरोखहि गये, इन्द्रजीत कहँ देखत भये।
इन्द्रजीत जैहैं तैं तहाँ, सठ संग्राम गयो हैं जहाँ।
इन्द्रजीत तब ऐसौ कह्यौ, मैं तो साहि चरन संग्रह्यौ।
मेरे मन यहई व्रत धरयौ, हजरति चरन कमल चित कर्यौ।
इन्द्रजीत तसलीम जुकरी, साहि दई अपनी पामरी।

[वीरसिंह देवचरित्र, भारत जीवन प्रेस, काशी,
१६०४ ई० पृ. ५१-५२]

वीरसिंह देवचरित्र का सम्पादन ठिकाने का नहीं हुआ है अतः उसके आधार पर कुछ निष्कर्ष निकालने का साहस नहीं होता। तो भी इतना तो कहना ही पड़ता है कि यहाँ 'पहिरावनि पठई पामरी' और 'साहि दई अपनी पामरी' में 'पामरी' कुछ विशेष अर्थ है, निदान पामरी के अर्थ पर ध्यान दिया तो काशी नागरी प्रचारिणी सभा के 'हिन्दी शब्दसागर' कोष में सूर का यह अवतरण मिला—

"मोही साँवरे सजनी सब ते गृह मोको न सोहाई।
द्वार अचानक होइ गये री सुन्दर बदन दिखाई।
ओढ़े पोरी पामरी पहिरे नील निचोल।
भौहैं काँट कटीलियाँ सिख कीन्हीं बिन मोल॥"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पामरी'के साथ'सखि कीन्हीं' से कुछ आशा बँधी तो इसका यह पाठ घूर उठा—

"भौंहैं कांट कटीलियां सखि वश कीन्ही बिन मोल।"

अस्तु, इधर की आशा छोड़ अब केशव को ही लेना चाहिए और देखना यह चाहिए कि उनकी दृष्टि में 'पामरी' क्या है। 'पहिरावनि पठई पामरी' में 'पामरी' ही 'पहिरावनि' है अथवा वह उससे भिन्न है। यदि भिन्न है तो उसका अर्थ क्या है, 'पहिरावनि' का अर्थ तो सरलता में 'सिरोपाव' वा 'खिलअत' लिया जा सकता है पर 'पामरी' का क्या किया जाय ? क्या इसका सम्बन्ध कुछ 'चेला करौ' से है ? संभव है, कारण कि यह 'पामरी' इन्द्रजीत को तसलीम करने पर झरोखा-दर्शन के पश्चात् दी जाती है। तो क्या इन्द्रजीत 'दरशनिया' हो गये हैं ? हमारी धारणा तो यही है।

अकबर की 'चेलाकरो' नीति पर अन्यत्र विचार किया गया है। यहाँ बताया यह जाता है कि वास्तव में अकबर के चेले चार कोटियों में विभक्त थे। उनका विभाजन होता था तन, धन, धाम और धर्म की कसौटी पर, जो चारों को त्याग कर अकबर की शरण में आता था वही अकबर का सच्चा चेला था और उसी को अकबर 'शस्त व शबह' भी देता था। शेष को नहीं।

'शस्त' के विषय में विद्वानों में मतभेद है, आईन अकबरी से पता चलता है कि उस पर 'अल्लाहो अकबर' उत्कीर्ण रहता था पर वास्तव में उसकी आकृति क्या थी इसका ठीक-ठीक पता अभी तक इतिहास को न चला। लोगों ने उसे अँगूठी, जन्नार (जनेऊ) और न जाने क्या क्या माना है। और कुछ ने तो उसी में अकबर की शबीह को भी देखा है। परन्तु हमारी दृष्टि में 'शस्त' में अकबर की मूर्ति नहीं रहती थी। वह अलग से दी जाती थी। कदाचित् यही कारण है कि जहाँगीर ने अपनी 'तुजुक' में 'शस्त व शबह' का उल्लेख किया है। अस्तु, हमारा कहना है कि अकबर के चेलों की जहाँ चार कोटियाँ थी। वहीं अकबर के प्रसाद की भी, जिन्हें हम क्रमशः १ दर्शन, २ पामरी, ३ शस्त और ४ शबह वा शबीह के रूप में पाते हैं। 'शस्त' और 'शबह' 'धाम' और 'धर्म' समर्पण करनेवालों को मिलते थे अतएव उसका उल्लेख केशव ने नहीं किया, हाँ, 'दर्शन' और 'पामरी' का पता अवश्य दिया।

'दर्शन' तो सभी को प्राप्त हो जाता था, झरोखादर्शन के समय जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ पहुँचता दर्शन पा जाता था, पर दर्शन के बिना जो जलपान ही नहीं करता वही दरशनिया बनता था। रही 'पामरी' की बात। सो हमारा कहना है कि यह और कुछ नहीं सूफियों का खिरका है जो मुरीद को मुरशिद की ओर से दिया जाता था। अकबर ने इन्द्रजीत को अपनी पामरी दी, इसका सीधा अर्थ हुआ कि अकबर ने इन्द्रजीत को अपना शिष्य बना लिया और फलतः उसका तन-धन अकबर का हो गया। यदि वह अपना धाम-धर्म भी अकबर को दे देता तो उसे 'शस्त-शबह' भी प्राप्त हो जाते और फलतः वह अकबर का पक्का चेला हो जाता। हाँ, अकबर के दरबार में धाम-धर्म-सम्र्पण का अर्थ 'इसलाम कबूल करना' नहीं 'तौहीद इलाही' अथवा 'दीन इलाही' पर आचरण करना था। अर्थात् राजा बीरबर की कोटि में आ जाना था। अकबर की दृष्टि में अपना आचरण करता हुआ व्यक्ति भी इसका शिष्य हो सकता था पर पक्का चेला वही हुआ जो अपने गुरु के लिये सब कुछ छोड़ सका। निदान मानना पड़ता है कि 'पामरी' खिलअत से अलग है। खिलअत को हम 'पहिरावनी' कह सकते हैं पर 'पामरी' नहीं। 'पामरी' तो 'खिरका' है। 'खिरकः जो शिष्यों को दिया जाता है। आशा है इससे 'शस्त' को समझने में भी सहायता मिलेगी और इतिहास कुछ हिन्दी साहित्य की ओर भी देखना सीखेगा।

राजा लक्ष्मण सिंह

[श्रीरामचंद्र टंडन एम० ए० एल् एल्, बी०]

जब मुझसे इस विषय पर बातचीत करने के लिये कहा गया तो पहले मेरे मन में कई विचार उठे। क्या सचमुच राजा लक्ष्मण सिंह एक गुमनाम व्यक्ति हैं ? हिन्दी साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से भी पहले जिन बड़े लोगों ने हिन्दी की हिमायत की और हिमायत ही नहीं बल्कि उसे सवांरने में अच्छा-खासा हिस्सा लिया, उनमें राजा लक्ष्मण सिंह का नाम बहुत आगे आता है। राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' के यह समकालीन थे और उस समय जब कि 'सितारेहिन्द', जहाँ तक भाषा का सम्बंध है, हिन्दी-उर्दू के मिश्रित रूप के परिपोषक थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय राजा लक्ष्मण सिंह ने हिन्दी भाषा को फारसी-अरबी शब्दों के हमले से बचाने का सफल प्रयत्न किया। उनका नाम तो अपने समय के साहित्यिकों में अमिट रूप से अंकित है। उन्हें गुमनाम कैसे कहा जाय?

दूसरा विचार जो मन में उठा, वह यह था कि 'क्या राजा लक्ष्मण सिंह वास्तव में कवि थे?' यह सही है कि उन्होंने महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' का हिन्दी पद्य में अनुवाद किया, और इसी कवि के मशहूर नाटक 'शकुन्तला' के श्लोकों का भी हिन्दी छन्दों में अनुवाद किया लेकिन क्या इन अनुभवों के आधार पर उन्हें कवि की उपाधि दी जा सकती है? या कवि होने के लिए मौलिक प्रेरणा की जरूरत है।

इस तरह उनके गुमनाम होने और कवि होने—इन दोनों बातों परशंका उत्पन्न होती है लेकिन इस शंका के दूसरे पहलू भी हैं।

अच्छा अनुवादक, चाहे वह गद्य का ही क्यों न हो, जब किसी कृति को दूसरी भाषा में उतारता है, तो उसका काम नकल मात्र नहीं होता वह एक प्रकार से मौलिक कृति को पुनर्जन्म देता है और इस तरह अपने निजी गुणों का परिचय देता है। अगर अनुवाद पद्य से पद्य में हो तो अनुवादक की कठिनाई कई गुना बढ़ जाती है, और जब तक अनुवादक में स्वयं कवित्व का मौलिक गुण न हो वह सफल अनुवाद कर ही नहीं सकता। राजा लक्ष्मण सिंह के अनुवादों में यह गुण है, उनके छंदानुवादों में ऐसा प्रवाह है कि वह मौलिक जान पड़ता है। जिस व्यक्ति में कवि गुण न हो उसके लिए ऐसा अनुवाद करना सम्भव नहीं। इसलिए राजा लक्ष्मण सिंह को कवि की उपाधि से प्रतिष्ठित करना अनुपयुक्त नहीं, बल्कि सर्वथा समीचीन है।

इसके साथ-साथ अगर विचार करके देखा जाय तो कवि की हैसियत से वह कमोवेश गुमनाम ही हैं। उनकी हिन्दी की सेवाओं को हम साधारणतया जानते हैं लेकिन उनकी रचनाओं का विशेष प्रचार नहीं। शकुन्तला का अनुवाद तो यत्र-तत्र परीक्षाओं की पाठ्य-पुस्तकों में है इसीलिए उपलब्ध है। लेकिन उनका मेघदूत का अनुवाद सहज में उपलब्ध नहीं। इलाहाबाद हिन्दी साहित्य का एक केन्द्र है, यहाँ के कुछ प्रमुख पुस्तकालयों में मुझे राजा लक्ष्मण सिंह के 'मेघदूत' के अनुवाद की प्रति न मिली।

इस तरह उनका गुमनाम होना सिद्ध भी हो जाता है।

राजा लक्ष्मण सिंह यदुवंशी क्षत्री थे आगरा उनकी जन्मभूमि है। वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका जन्म ९ अक्तूबर सन् १८२६ ई० को हुआ था। उनकी मृत्यु १४ जूलाई सन् १८९६ ई० को हुई। इस तरह हम आज राजा लक्ष्मण सिंह को इस समय याद रहे हैं जब कि उनकी मृत्यु की हिन्दी संसार में पचासवीं वर्षी मनाई जानी चाहिए थी।

बचपन में लक्ष्मण सिह को संस्कृत और फारसी की शिक्षा मिली। बाद में यह आगरा कालिज में भरती हुए। उस समय डिगरी की परीक्षाएं तो होती न थीं—केवल जूनियर और सीनियर परीक्षाएं होती थीं। कालिज से इन्होंने सीनियर परीक्षा पास की और कालिज छोड़ने पर इन्होंने बँगला भाषा भी सीख ली। इस तरह २४ वर्ष की अवस्था में यह संस्कृत, हिन्दी, अरबी, फारसी, बँगला और अंग्रेजी के ज्ञाता हो गए थे। कालिज में इनकी दूसरी भाषा संस्कृत थी। घर पर यह हिन्दी, फारसी, अरबी का अभ्यास करते थे।

कालिज छोड़ने पर उस समय के पश्चिमोत्तर सूबे के छोटे लाट के दफ़्तर में १००) मासिक वेतन पर अनुवाद करने के काम पर ये नियुक्त हुए और बराबर तरक्की करते रहे। सन् १८५५ में उन्हें इटावे की तहसीलदारी मिली, जहां पर इंडियन नेशनल कांग्रेस के जन्मदाता मि० ह्यूम कलक्टर थे। ह्यूम साहब से यह संपर्क में आए और उन्होंने इनकी योग्यता की पहचान कर इन्हें डिप्टी कलक्टर बनवा दिया। और इनकी नियुक्त बाँदे में हुई।

सन् १८५७ में, यह छुट्टी लेकर बाँदे से आगरे जा रहे थे, उसी बीच सिपाहियों का बलवा हुआ। इस अवसर पर इन्होंने अंग्रेज़ों को बड़ी मदद पहुँचाई। इससे १८७० के पहले दिल्ली दरबार में इनको सरकार ने राजा की पदवी दी। और इनका वेतन ८००) मासिक हो गया। यह २० वर्ष तक बुलंद शहर में पहले दर्जे के डिप्टी कलक्टर रहे।

यद्यपि अपने सरकारी कामों से इन्हें बहुत कम फुरसत मिलती फिर भी हिन्दी की ओर इनकी ऐसी लगन थी कि कुछ न कुछ उसकी सेवा किया ही करते। बहुत-सी अंग्रेज़ी और फारसी की पुस्तकों के अनुवाद इन्होंने सरकार के लिए किए। इनमें से एक ताजीरात हिन्द का अनुवाद "दंड-संग्रह" है। राजा साहब ने बुलंदशहर का एक इतिहास भी लिखा, जो कि हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी तीनों भाषाओं में छपा।

लेकिन जिन रचनाओं ने आपका नाम हिन्दी-संसार में अमर किया है, वह हैं कालिदास का शकुन्तला नाटक और मेघदूत तथा रघुवंश काव्यों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा में अनुवाद । रघुवंश का अनुवाद गद्य में है । शकुन्तला का अनुवाद भी पहले पूरा का पूरा गद्य में हुआ था, लेकिन दूसरे संस्करण में श्लोकों का अनुवाद पद्य में कर दिया गया है । मेघदूत का अनुवाद गद्य और पद्य दोनों में है । इनके अनुवाद की यह विशेषता है कि पद्य तो क्या गद्य में भी फारसी शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है, शुद्ध हिन्दी शब्दों का ही प्रयोग हुआ है ।

जिस तरह आजकल हिन्दी लिखनेवालों के दो दल हैं एक वह जो कि हिन्दी भाषा से फारसी-अरबी शब्दों को दूर रखना चाहता है, और दूसरा वह जो अरबी-फारसी के शब्दों का बे-रोक-टोक व्यवहार करने का समर्थक है, उसी प्रकार उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भी हमारे यहाँ दो दल रहे हैं । राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' जैसा अभी कह आए हैं हिन्दी-उर्दू की मिश्रित शैली का प्रचार करना चाहते थे । इसके विपरीत राजा लक्ष्मण सिंह जो कि अवस्था में उनसे तीन ही वर्ष छोटे थे, शुद्ध हिन्दी को चलाना चाहते थे । सितारेहिन्द ने अपने सिद्धान्त के समर्थन में पुस्तकें लिखीं और लिखाईं । राजा लक्ष्मण सिंह ने अपने सिद्धान्त के अनुकूल अरबी-फ़ारसी शब्दावली से विहीन हिन्दी भाषा को साहित्य के सिंहासन पर बिठाया । उन्होंने यह दिखाने के लिए कि शुद्ध हिन्दी में भावों को व्यक्त करने की कैसी सामर्थ्य है शंकुतला नाटक, मेघदूत और रघुवंश के अनुवाद प्रस्तुत किए । यह तीनों पुस्तकें हिन्दी का गौरव बढ़ाती है । इनकी भाषा सरल और पुष्ट है । सन् १८७८ ई० में प्रकाशित, अपने 'रघुवंश' के विज्ञापन में, राजा लक्ष्मण सिंह ने भाषा विषयक अपने विचार दिए हैं । उनका कहना है कि "हमारे मत में हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यारी-न्यारी हैं । हिन्दी इस देश के हिन्दू बोलते हैं और उर्दू यहाँ के मुसलमानों और पारसी पढ़े हिन्दुओं की बोलचाल है । हिन्दी में संस्कृत के पद बहुत आते हैं, उर्दू में अरबी-पारसी के परन्तु कुछ अवश्य नहीं कि अरबी पारसी के शब्दों के बिना हिन्दी न बोली जाय और न हम उस भाषा को हिन्दी कहते हैं जिसमें अरबी-पारसी के शब्द भरे हों ।"

स्वर्गीय बाबू श्यामसुन्दर दास ने बताया है कि "आधुनिक हिन्दी गद्य के विकास में राजा लक्ष्मण सिंह की कृतियाँ एक विशेष परिवर्तन की सूचक हैं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जो युग-प्रवर्तक कार्य किया उसका सूत्रपात करने का श्रेय राजा लक्ष्मण सिंह को है । राजा लक्ष्मण सिंह उस अंधकार युग में एक देदीप्यमान नक्षत्र की भाँति पथप्रदर्शन का कार्य कर गए हैं ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब राजा साहब की कविता का कुछ परिचय करा देना रह जाता है। सब से पहले 'शकुन्तला नाटक' के कुछ पद्यों को लीजिए।

नाटक की प्रस्तावना में ग्रीष्म के वर्णन में एक श्लोक है। उसका अनुवाद ऐसी सुन्दरता से हुआ है कि पढ़नेवालों को कहीं अनुवाद की गंध नहीं आती, बल्कि मूल का पूरा-पूरा आनंद मिलता है —

कैसे नीक लागत हैं बासर ऋतु ग्रीषम के,
जीवन को संध्या प्यारी सुख उमहति है।
सरिता सरोवर कुंड माँहि केलि करिबे ते,
तरिबे ते देह दूनों आनंद लहति है।
घनी घनी छाया में बन की पवन लागे,
झुकि-झुकि आवे नींद कल ना गहति है।
त्रिविध समीर बहै पाटलि-सुगंधि-सनी,
लागति शरीर आधी शीवलता रहति है॥

आगे चल कर, पहले अंक में दुष्यंत को शकुंतला-दर्शन होता है दुष्यंत मोहित हो जाते हैं। शकुन्तला बल्कलधारिणी है। दुष्यंत कहते हैं कि "माना कि बल्कल वस्त्र इसके शरीर के योग्य नहीं हैं, फिर भी यह बात नहीं कि शोभा न देते हों।" कहते हैं—

सरसिज लगत सुहावनो यदपि लियो ढकि पंक;
कारी रेख कलंक हूँ, लसति कलाधर अंक।
पहरे बल्कल-बसन यह, लागति नीकी बाल;
कहा न भूषन होइ जो, रूप लिख्यो बिधि भाल॥

नाटक का चौथा अंक सब अंकों में सुंदर माना गया है। इसमें शकुंतला की कण्व से बिदा का वर्णन है और उनके आश्रम को छोड़ कर पति के यहां जाने का हाल है। इस अंक के कुछ पद्य लीजिए।

वनवासिनी शकुन्तला का सखियां श्रृंगार कर रही हैं। उसे सजाने के लिए एक ऋषिकुमार को आज्ञा मिली थी कि लता-वृक्षों से फूल ले आओ। वह वस्त्राभूषण आदि लाकर उपस्थित करता है। कहता है:—

काहू तरवर दीन्ह उतारी, मंगलीक शशि सम सित सारी।
काहू दियो लाख-रस सोई, जासों तुरत महावर होई।
औरन बहुबिधि भूषन भीने, बनदेविन के हाथन दीने।
ते निकसे पहुँचे लो हाथा, होड़ करत नवशाखन साथा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिता कण्व दुखी हैं : वह कहते हैं:—

मो-से बन बासीन जो, इतौ सतावत मोह।
तौ गेही कैसे सहैं, दुहिता-प्रथम-बिछोह ॥

तपोवन के सहबासी वृक्षों को संबोधन कर वह कहते हैं :—

पाछे पीवति नीर जो, पहले तुम को प्याय।
फूल-पात तोरति नहीं, गहने हू के चाय ॥
जब तुम फूलन के दिवस, आवत हैं सुखदान।
फूली अंग समात नहि, उत्सव करति महान।
सो यह जाति शकुंतला, आज पिया के गेह।
आज्ञा देहु पयान की, तुम सब सहित सनेह ॥

और नेपथ्य में यह सुनाई देता है :—

पंथ होय याको सुखकारी, पवन मंद अरु अभिमत चारी।
ठौर ठौर सरिता सर आवें, हरित कमलिनी छाय सुहावें।
तरवर शीतल छांह घनेरे, मेटनहार ताप रवि केरे।
मृदुल भूमि पग-पग सुखदाई, मनहु कमल-रज दीन्ह बिछाई।

इस प्रकार नाटक के अनेक स्थलों से सुन्दर पद्य उद्धृत किए जा सकते हैं जो कि राजा लक्ष्मण सिंह के रचना-कौशल के परिचायक होंगे, और भाषा पर उनका कैसा अधिकार था यह भी व्यक्त करेंगे।

अंत में हम उनके मेघदूत के अनुवाद से दो छंद देकर आज की बातचीत समाप्त करेंगे। मेघदूत के न जाने कितने अनुवाद हिन्दी गद्य-पद्य में हुए हैं। राजा लक्ष्मण सिंह के अनुवाद में कुछ अपनी विशेषता है। यह अनुवाद बहुत ही सफल हुआ है।

मेघदूत की कथा प्रसिद्ध है। एक विरही यक्ष अलकापुरी से बहिष्कृत रामगिरि के आश्रम में शाप के दिन काटने के लिए ठहरा हुआ है। अपनी पत्नी से बिछुड़ कर वह शरीर से क्षीण हो गया है। उसके दिन रोते-कलपते बीतते हैं। असाढ़ का महीना आता है और सामने की पहाड़ी की चोटी से लिपटा हुआ बादल उसे दिखाई पड़ता है। वह उस बादल द्वारा अपनी प्रेयसी को संदेस भेजता है और मार्ग के स्थलों आदि का वर्णन करता है।

वह कहता है कि उज्जयिनी की ओर जाते हुए तुम उतर कर उस निर्विंध्या नदी का भी रस लेना जिसकी उछलती हुई लहरों पर चह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चहाते पत्तियों की पाँते ही करधनी-सी दिखाई देंगी। कवि के शब्दों में ही सुनिए :—

रस बीच मैं लै चलियों निरविंध कौ जो मग तेरो निहारती हैं।
कटि किंकिन मानों बिहंगम पांति तरंग उठे भनकारती हैं।
मनरंजनि चाल अनोखी चलैं अरु भौंर-सी नाभि उघारती हैं।
बतरात है भीतसों आढ़ि यही तिय बिभ्रम मोहनी डारती हैं॥

आगे चल कर यक्ष मेघ को उज्जयिनी के महाकाल के मंदिर की ओर चलने को कहता है। मंदिर में होनेवाले नृत्य देखने का आदेश करता है और कहता है कि साँझ की पूजा हो जाने पर तुम वहाँ के वृक्षों पर छा जाना। वहां जो स्त्रियाँ अपने प्रेमियों से मिलने के लिए घनी अँधेरी रात में निकली होंगी उनको अँधेरे में कुछ न सूझता होगा। तुम कसौटी में सोने के समान दमकनेवाली अपनी बिजली चमका कर उन्हें ठीक-ठीक मार्ग दिखा देना। लेकिन गरजना-बरसना न, नहीं तो घबड़ा जायेंगी।

कवि कहता है :—

भीत के मंदिर जाति चलीं मिलिहैं तहँ केतिक रात में नारी।
मारग सूझ तिन्हैं न परै, जब सूचिकाभेद झुके अँधियारी।
कंचन रेख कसौटी-सी दामिनि तू चमकाइ दिखाइ अगारी।
कीजियो ना कहुँ मेंह की घोर मरैं अबला अकुलाइ बिचारी॥

इन नमूनों से राजा लक्ष्मण सिंह के अनुवाद-कौशल का ही हमें पता नहीं चलता, हम उनके कवि हृदय की भी झलक पाते हैं जिसके बिना ऐसे सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत करना सहज नहीं। कौन कह सकता है कि इन छंदों में मूल-जैसा रस नहीं है[1] ?

———

[1] यह बातचीत अ इंडिया, रेडियो, लखनऊ से "कुछ गुमनाम कवि" के सिलसिले में, १ जूलाई १९४९ को प्रसारिक की गई थी। इसकी सामयिकता इस वि में है कि १४ जूलाई को राजा लचमण सिंह की ५० वीं निधन-तिथि। रेडियो अधिकारियों के सौजन्य से यह प्रकाशित हो रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी जगत्

भारत सरकार के प्रेस व्यूरों में हिन्दी की अवस्था

[श्री मौलिचन्द्र शर्मा एम० ए० एल् एल्० बी०]

भारत सरकार के सूचना व प्रसार विभाग की हिन्दी विषयक नीति में कुछ आशाजनक परिवर्तन देख हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थायी समिति ने अपने मई के अधिवेशन में रेडियो वहिष्कार का संवरण कर सरकार द्वारा बढ़ाये गए सहयोग के हाथ को ग्रहण किया और रेडियो विभाग की हिन्दी उर्दू परामर्शदात्री स्थायी समिति में मुझे अपने प्रतिनिधि के रूप में भेज दिया। समिति की पहली बैठक भी नहीं हुई थी कि उसी विभाग के दूसरे अंग प्रेस इन्फर्मेशन व्यूरो के विषय में यह समाचार मिला कि उसका हिन्दी भाग दिल्ली से हटाकर युक्तप्रान्त के किसी नगर में भेज दिया जायगा। हिन्दी के एक-दो पत्रों में यह समाचार छपा, टिप्पणिएँ हुईं और कुछ मित्रों ने मुझे सचेत किया।

युद्ध के दिनों में इस बहाने से कि दिल्ली में स्थान की कमी है प्रेस व्यूरों के हिन्दी भाग को दिल्ली से हटाकर लाहौर भेज दिया गया था, इसका विरोध हुआ और एसेम्बली में प्रश्न पूछे गए तो उन दिनों के विभागीय सदस्य सर सुलतान अहमद ने कहा था कि दिल्ली से हिन्दी भाग के हटाने में केवल यही कारण था कि युद्धकालीन परिस्थिति के फलस्वरूप दिल्ली में स्थान की नितान्त कमी थी और उन्होंने आश्वासन दिया कि सुविधा होते ही हिन्दी भाग तुरन्त दिल्ली वापस बुला लिया जायगा। अस्तु ! अब, जब कि अमरीकनों के चले जाने के कारण सैकड़ों मकान नई दिल्ली में खाली पड़े हैं और स्थानाभाव के बहाने हिन्दी वालों को दिल्ली से नहीं हटाया जा सकता तो शायद यह बहाना बनाया गया है कि दिल्ली हिन्दी का केन्द्र नहीं हैं।

प्रेस व्यूरो के हिन्दी भाग ने अधिकारियों के मन के अनुकूल हिन्दी की हत्या करने से अब तक इनकार किया, वास्तविक कारण यही है, जिससे उन्हें दिल्ली से निकाला दिये जाने का उद्योग हो रहा है। यदि वे भी रेडियो वालों की तरह हिन्दुस्तानी के नाम पर उर्दू का प्रचार करते और देवनागरी अक्षरों में भी हिन्दी के स्थान पर उर्दू लिखते तो उनके वेतन बढ़ते, मान बढ़ता और बड़े लाड़चाव से उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़ कर अच्छे बँगले दिल्ली में दिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते, परन्तु कुछ तो उनमें ऐसे आदमी थे, जिन्हें यूँही हिन्दी से प्रेम था, कुछ उनके रास्ते में यह भी कठिनाई थी कि यदि वे प्रचलित हिन्दी को छोड़ किसी तथा कथित हिन्दुस्तानी शैली में समाचार बनाकर हिन्दी पत्रों के पास भेजते तो संभवतः हिन्दी पत्र उन्हें स्वीकार ही न करते, इसलिए हिन्दी समाचार पत्रों में जो भाषा लिखी जाती है, उसी का उपयोग उन्हें भी करना पड़ा। फलतः इस विभाग द्वारा प्रकाशित पत्रों में शुद्ध सुन्दर हिन्दी का व्यवहार होता रहा। इस सेक्शन के वहाँ रहने से भारत सरकार के सूचना और प्रसार विभाग के सारे वातावरण पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है। यह तर्क एक प्रकार से अकाट्य सिद्ध हुआ है कि यदि इस विभाग के प्रेस व्यूरो में जहाँ से लिखित रूप में समाचारों और सूचनाओं का प्रकाशन होता है वहाँ यदि हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाएँ अपने वास्तविक रूप में प्रयोग की जाती हैं तो इसी विभाग के रेडियो प्रसारों में ऐसा क्यों नहीं किया जाता? रेडियो विभाग के प्रमुख अधिकतर यह कहा करते हैं कि दिल्ली में हिन्दी की 'टैलेण्ट' काफी नहीं मिलती; परन्तु इसका उत्तर उनके पास भी नहीं होता कि यदि प्रेस व्यूरो में हिन्दी के 'टैलेण्ट' की कमी नहीं तो रेडियो में ही उसका क्यों टोटा पड़ जाता है? इन्हीं कारणों से प्रेस व्यूरो के हिन्दी उपविभाग को दिल्ली से हटाकर कहीं दूर फेंक देना उन लोगों की नीति के अनुकूल है, जो भारत सरकार में हिन्दी के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर डरते है।

मैंने यही सब सोचकर पत्रों में एक वक्तव्य छपाया और भारत सरकार से अनुरोध किया कि वे हिन्दी विभाग को दिल्ली से न हटाएँ। उसपर कुछ विशेष प्रभाव न होता देख मैंने विभागीय सदस्य माननीय सर अकबर हैदरी को एक पत्र लिखा और तर्क सहित यह समझाया कि हिन्दी प्रेस के पास समाचार भेजना यदि अभीष्ट है तो वह कार्य उत्तम रीति से केवल दिल्ली से हो सकता है और किसी भी स्थान से उतने थोड़े समय में समाचार सब पत्रों को न पहुँच पाएँगे जितने दिल्ली से। मैंने उदाहरण दिया कि कैबिनेट मिशन ने जब अपना वक्तव्य १६ मई को प्रकाशित किया तो उससे कुछ घंटे पहले वह वक्तव्य प्रेस व्यूरो को प्रकाशनार्थ दे दिया गया था, और उन्हीं कुछ घण्टों में व्यूरो में उसके हिन्दी उर्दू अनुवाद किए गये और हवाई डाक या पहली डाक से चारों ओर भेज दिए गए। उसी दिन या दूसरे दिन एक ओर लाहौर और दूसरी ओर कलकत्ता तथा बम्बई तक उन सब नगरों में प्रकाश्य वस्तु पहुँच गई जहाँ से हिन्दी दैनिक निकलते

५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। और उन्होंने उसका उपयोग किया। यदि हिन्दी प्रेस व्यूरो लखनऊ या लाहौर में होता तो मिशन का वक्तव्य जिस समय दिल्ली में व्यूरो को मिला था उसके कई घंटे पीछे हिन्दी व्यूरो के पास पहुँचता क्योंकि वह रेल की या हवा की डाक द्वारा भेजा जाता फिर वहाँ से अनूदित होकर वह पत्रों के पास भेजा जाता और इतनी देर में उनके पास पहुँचता कि वे एसोशियेटेड प्रेस के अंगरेजी तार द्वारा प्राप्त वक्तव्य का उल्था करा कर स्वयं पहले ही छाप चुके होते। समाचार प्रसार के लिए तो पहला गुर यह है कि वह शीघ्र से शीघ्र पत्रों के पास पहुँचा दिया जाय। राजधानी होने के कारण बहुत से समाचारों का उद्गम दिल्ली से ही होता है और वहीं से शीघ्रतर उनका प्रसार हिन्दी जगत में किया जा सकता है। मैंने यह भी कहा कि हिन्दी केवल प्रान्तीय भाषा नहीं वह सारे देश की भाषा है और बहुत शीघ्र राष्ट्र भाषा के रूप में अंगरेजी का स्थान लेने जा रही है। अतः भारत सरकार के प्रकाशन विभाग में उसका स्वभावतया प्रमुख स्थान है और उसका दिल्ली में रहना आवश्यक है।

मैंने यह भी कहा कि यदि युक्तप्रान्त के बहुसंख्यक हिन्दी पत्रों की सेवा करना उनका उद्देश हो तो उन्हें चाहिये कि इस विभाग की एक शाखा लखनऊ या इलाहाबाद में खोल दें परन्तु उसका यह अर्थ नहीं होना चाहिए की राजधानी से हिन्दी विभाग उठा दिया जाय।

रेडियो की हिन्दी-उर्दू-परामर्शदात्री स्थायी समिति की पहली बैठक के समय एक जलपान गोष्ठी के उपलक्ष्य में माननीय सर अकबर हैदरी मिले और इस विषय पर भी उनसे वार्तालाप हुआ। उन्होंने विश्वास दिलाया कि हिन्दी के प्रति वही वर्ताव किया जायगा जो उर्दू के साथ किया जाता है क्योंकि भारत की राष्ट्रभाषा के ये ही दो रूप हैं, जो इस देश में चलते हैं। उन्होंने एक बार फिर भी मुझे बुलाया। उनके कहने से मैं प्रेस व्यूरो के अध्यक्ष श्री निवास ऐयगर से भी मिला और इस विषय की लंबी चर्चा उनसे हुई। सिद्धान्ततः उन्होंने यह स्वीकार किया कि हिन्दी प्रेस व्यूरो राजधानी में ही रहना चाहिए। मैंने इस विषय को स्पष्ट करने के लिए उदाहरण देते हुए कहा कि यदि किसी कारण से या एक भावी युद्ध में राजधानी दिल्ली से हटाकर सुदूरपूर्व, पश्चिम या दक्षिण में ले जाई जाय तब भी हिन्दी प्रेस व्यूरो वहीं जायगा जहाँ राजधानी जायगी, क्योंकि भारत की जनता तक सरकार की दृष्टि से आवश्यक समाचारों का प्रसार करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका उद्देश है।

मुझे यह जान आश्चर्य हुआ कि जहाँ समस्त हिन्दी-जगत् में इस विषय पर काफ़ी रोष था वहाँ एक भी प्रस्ताव इसके विरोध का सरकार के पास नहीं भेजा गया। हमारी कार्य प्रणाली की दुर्बलता का यह प्रमाण है।

सर अकबर और श्री ऐयंगर की बातों से मुझे यह भरोसा होता है कि अब हिन्दी के साथ वैसा अन्याय न होगा और हिन्दी प्रेस ब्यूरो दिल्ली ही में रहेगा, परन्तु मेरा सुझाव है कि हिन्दी के पत्रकार और हिन्दी की संस्थाएँ इस ओर सजग रहें कि किसी दिन जब हम अचेत हों चुपके से इस प्रकार की आज्ञाएँ न निकाल दी जायँ। बिना सचेत रहे अधिकारों की रक्षा नहीं हो सकती।

संयुक्त प्रान्त की देशजभाषा या वर्नाक्युलर

(श्री रविशंकर शुक्ल)

संयुक्त प्रांत की सरकार ने आज्ञा जारी की है कि इस हीनता-व्यंजक शब्द 'वर्नाक्युलर' का प्रयोग न किया जाय। हम इस आज्ञा का स्वागत करते हैं। परंतु संयुक्त प्रांत की 'वर्नाक्युलर' क्या है, अर्थात् इस प्रांत की भाषा के लिये 'वर्नाक्युलर' के स्थान में किस नाम या शब्द का प्रयोग किया जायगा? गवर्नमेंट ने 'वर्नाक्युलर, के स्थान में 'हिंदुस्तानी' का प्रयोग करने की आज्ञा दी है। परंतु 'हिंदुस्तानी' इस प्रांत की देशज भाषा या जन-भाषा नहीं है। इस प्रांत की जन-भाषा को 'हिंदी' नाम से ही पुकारा जा सकता है। इस भाषा का यह नाम मुसलमानों ने कई शताब्दियाँ हुईं तब रक्खा था, और अब इस नाम ने इस भाषा के प्राचीन नाम 'भाषा' या 'भाखा' का स्थान ले लिया है। 'हिंदुस्तानी', जिसको 'देहलवी' और 'खड़ी बोली' भी कहते हैं, पश्चिमी हिंदी की एक बोली है और उत्तरी दोआब में बोली जाती है, अर्थात् हिंदुस्तानी दिल्ली के आस-पास के केवल दो-तीन ज़िलों की वर्नाक्युलर या मातृभाषा है। संयुक्त प्रांत के दूसरे ज़िलों में व्रज, बुंदेली, कन्नौजी आदि पश्चिमी हिंदी की बोलियाँ और पूर्वी, हिंदी, अवधी या कोशली, बोली जाती हैं। इस प्रकार संपूर्ण संयुक्त प्रांत की वर्नाक्युलर या मातृभाषा हिंदी है। प्रत्येक भाषा-शास्त्री यही कहेगा। भारत-सरकार की 'लैंगुएज सरवे ऑफ़ इंडिया' (भारत का भाषा-विवरण) में भी इस प्रांत की भाषा के लिये 'पश्चिमी हिंदी' और 'पूर्वी हिंदी' शब्द आए हैं और जन-गणना-संबंधी सरकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिपोर्टों में इस प्रांत की देशज भाषा, जन-भाषा या मातृभाषा को सदैव इसी नाम से पुकारा जाता रहा है। इस प्रांत की वर्नाक्युलर को 'हिंदुस्तानी' बताना एक बिलकुल बेसिर-पैर की बात है। हिंदुस्तानी संयुक्त प्रांत के केवल एक जनपद की भाषा है और वह स्वयं हिंदी की एक बोली है।

अब उर्दू को लीजिए। उर्दू केवल खड़ी बोली हिंदी की एक साहित्यिक शैली है। उर्दू कोई स्वतंत्र भाषा नहीं, और उसे किसी भी ज़िले या जनपद की जन-भाषा नहीं कहा जा सकता। भारत के भाषा-चित्र में 'उर्दू' नाम कहीं दिखाई नहीं देता। उर्दू अधिक-से-अधिक खड़ी बोली हिंदी जनपद पर अपना दावा कर सकती है, परंतु वहाँ भी उसे आधुनिक साहित्यिक खड़ी बोली हिंदी को समान स्थान देना पड़ेगा। यह सत्य है कि हिंदुस्तानी अर्थात् खड़ी बोली के बोलनेवाले प्रांत में सब जगह, विशेषतः नगरों में, मिल जायँगे, परंतु यह कोई हिंदुस्तानी के साथ ख़ास बात नहीं है। हिंदी की अन्य जनपदीय बोलियों के बोलनेवाले भी प्रांत में सब जगह मिल जायँगे। यह तो केवल आधुनिक यातायात के साधनों और आर्थिक प्रेरणाओं का परिणाम है। हिंदुस्तानी या खड़ी बोली की तो बात ही क्या है, हमारे आधुनिक नगरों में प्रांत के बाहर की भाषाओं जैसे बँगला, पंजाबी और अँगरेज़ी के बोलनेवाले भी मिल जायँगे। इससे किसी स्थान की वर्नाक्युलर, जन-भाषा या मातृभाषा नहीं बदल जाती। खड़ी बोली जनपद के बाहर हिंदुस्तानी केवल इने-गिने लोगों की मातृभाषा, घर में बोली जानेवाली भाषा या वर्नाक्युलर है। निःसंदेह पूरे प्रांत में शिक्षा, सामाजिक जीवन और राजकाज में साहित्यिक खड़ी बोली हिंदी और उर्दू का बतौर साहित्यिक भाषाओं के प्रयोग होता है, परंतु इस बात का प्रांत की बोली जानेवाली जन-भाषा अर्थात् वर्नाक्युलर से कोई संबंध नहीं। प्रांत-भर में शिक्षा, सामाजिक जीवन और राजकाल में अँगरेज़ी का भी तो प्रयोग होता है। बँगला, पंजाबी, मराठी-भाषी जो इस प्रांत में बस गए हैं, अपने बहुत-से कामों में अपनी-अपनी साहित्यिक भाषाओं का प्रयोग करते हैं। बहुत-से कामों के लिये साहित्यिक हिंदी और उर्दू का बतौर साहित्यिक भाषाओं के प्रयोग बंबई, पंजाब, बंगाल-ऐसे प्रांतों में भी होता है, परंतु इन प्रांतों की वर्नाक्युलर को हिंदुस्तानी बताने का शायद कोई साहस न करेगा। बिहार, मध्य-प्रांत और राजस्थान में तो शिक्षा, सामाजिक जीवन और राजकाज में केवल साहित्यिक हिंदी और उर्दू का ही व्यवहार होता है, परंतु क्या इस कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विहार, मध्य-प्रांत या राजस्थान की वर्नाक्युलर 'हिंदुस्तानी' कही जा सकती है? कोई साहित्यिक भाषा किसी स्थान की वर्नाक्युलर केवल इस कारण नहीं हो जाती कि वहाँ उसका कुछ कामों में व्यवहार होता है। संयुक्त प्रांत में साहित्यिक भाषाओं के प्रकरण में जिस बात पर ध्यान देना आवश्यक है, वह यह है कि हिंदी की कई जनपदीय बोलियाँ, विशेषतः ब्रज और अवधी, सदियों तक पूर्ण साहित्यिक भाषाओं के पद पर रह चुकी हैं और उनका अपना-अपना अति उच्च कोटि का विशाल साहित्य है। संस्कृति, बनावट और शब्दावली की दृष्टि से इन सब साहित्यों का आधुनिक हिंदी-साहित्य अर्थात् खड़ी बोली हिंदी-साहित्य से गहरा संबंध है, उर्दू-साहित्य से नहीं। इन सब साहित्यों का आधुनिक हिंदी-साहित्य से वही संबंध, सादृश्य और एकरूपता है, जो किसी भी भाषा की दो बोलियों के साहित्यों में होनी चाहिए या अपने आप होगी। यह सब साहित्य 'हिंदी'-साहित्य का अभिन्न अंग है, उर्दू-साहित्य का नहीं। इसी प्रकार इस प्रांत की विभिन्न जनपदीय बोलियों के लोक-साहित्य की भी, 'हिंदी'-साहित्य से एकरूपता है, और वह 'हिंदी'-साहित्य का अभिन्न अंग है, उर्दू-साहित्य या किसी 'हिंदुस्तानी' साहित्य का नहीं।

संयुक्त प्रांत, मध्यप्रांत और सीमाप्रांत को छोड़कर भारत के अन्य सब प्रांतों या प्रदेशों के अपने-अपने अलग-अलग नाम हैं, जिनसे उनकी अपनी-अपनी देशज, बोली जाने वाली जन-भाषाओं अर्थात् वर्नाक्युलरों और उनमें बसनेवाले लोगों का बोध होता है; क्योंकि यह मान लिया गया है (विशेषतः कांग्रेस द्वारा) कि मदरास-प्रांत के अंतर्गत आंध्र अर्थात् तेलगू-भाषी प्रदेश, तामिलनाद अर्थात् तामिल भाषी प्रदेश और कर्नाटक अर्थात् कन्नड़-भाषी प्रदेश हैं, और इसी प्रकार बम्बई-प्रांत के दो भाग किए जाते हैं—गुजरात अर्थात् गुजराती-भाषी प्रदेश और महाराष्ट्र अर्थात् मराठी-भाषी प्रदेश। मध्य-प्रांत में भी पिछले और वर्तमान कांग्रेसी मंत्रिमंडल के एक सदस्य पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र के प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप मध्य-प्रांत के हिन्दी-भाषा भाग का प्राचीन नाम महाकोशल (इस भाग में कोशली या पूर्वी हिन्दी बोली जाती है) सरकारी तौर से स्वीकृत किया जा चुका है और मध्य-प्रांत का मराठी-भाषी भाग तो भाषी की दृष्टि से महाराष्ट्र का ही एक अंग है। 'सीमा-प्रांत' भी कोई नाम नहीं। वह तो केवल एक राजनीतिक अर्थ को प्रकट करता है और शीघ्र ही सीमा-प्रांत का उचित नामकरण होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिवार्य है। इस प्रकार केवल संयुक्त प्रांत बच रहता है, जिसका अपना ऐसा कोई नाम नहीं, जिससे उसकी अपनी विशिष्ट भाषा, संस्कृति और जनता का बोध हो। पिछली कांग्रेसी सरकार के समय में यह सुझाव रक्खा गया था कि इस प्रांत का नाम 'हिन्द' रक्खा जाय। यह नाम सब प्रकार से ठीक तो होगा ही, जब से भारत के इस भू-भाग के प्राचीन नाम मध्य-देश का प्रचलन कम हुआ, तब से यह नाम थोड़ा-बहुत पहले से ही व्यवहार में है। इस प्रांत की देशज भाषा या वर्नाक्युलर 'हिन्दी' है, स्वयं प्रांत का नाम 'हिन्दी' होगा और यहाँ के निवासी 'हिन्दी कहलाएँगे—इस प्रकार यह नाम सब प्रकार से खरा उतरता है। 'हिन्दुस्तानी' नाम के साथ यह बात नहीं है, क्योंकि तब इस प्रांत का नाम 'हिन्दुस्तान' रखना पड़ेगा, परन्तु हिन्दुस्तान से संपूर्ण भारत का बोध होता है, और इस समय यह नाम इस अर्थ में 'हिन्द' की अपेक्षा कहीं अधिक प्रयुक्त होता है। और 'हिन्दुस्तानी' नाम को पूरे हिन्दुस्तान की भाषा अर्थात् राष्ट्र-भाषा का, न कि किसी विशेष प्रांत की भाषा का, व्यंजक बनाने की भर सक चेष्टा की जा रही है, और फिर संयुक्त प्रांत के निवासी भी केवल अपने आप को 'हिन्दुस्तानी' नहीं कह सकते। केवल 'हिन्दी' नाम ही ऐसा है, जिससे इस प्रांत की विशिष्ट भाषा, संस्कृति और जनता का बोध हो सकता है और होता है।

इस प्रांत की भाषा के लिये 'हिन्दुस्तानी' नाम का प्रयोग क्यों न किया जाय, इसका एक कारण और है। कुछ लोग शायद कहेंगे कि नाम में क्या धरा है। परन्तु प्रायः नाम में सब कुछ होता है और 'हिन्दुस्तानी' नाम के साथ यही बात है। आज 'हिन्दुस्तानी' शब्द कटु वाद-विवाद का विषय है और इस वाद-विवाद का भी भाषा से इतना संबंध नहीं है, जितना राजनीति से है। यह शब्द कभी साहित्यिक हिन्दी के लिये प्रयुक्त होता है, कभी उर्दू के लिये, कभी 'हिन्दी और उर्दू' के लिये (उदाहरणार्थ संयुक्त प्रांत की हिन्दुस्तानी एकाडेमी और लखनऊ-विश्वविद्यालय द्वारा) और अब इस बात की जोरों से चेष्टा की जा रही है कि यह नाम हिन्दी उर्दू की एक विचित्र प्रकार की राजनीतिक खिचड़ी या सरस्वती को दिया जाय, जिसे खोदकर प्रकट करने में कुछ लोग लगे हुए हैं। इस प्रांत की वर्नाक्युलर या भाषा न कभी इतनी अनेकरूपा और रंग बदलनेवाली थी न है और न हो सकती है, जितनी यह 'हिन्दुस्तानी' नाम की माया से जान पड़ेगी। इस प्रांत की भाषा का नाम वाद-विवाद का विषय नहीं बनाया जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता, क्योंकि वह विवादग्रस्त है ही नहीं। उसका नाम बिलकुल निश्चित हैं। वह है 'हिन्दी'। असली नाम 'हिन्दी' के स्थान में 'हिन्दुस्तानी' नाम धरने का केवल यह परिणाम होगा कि 'हिन्दुस्तानी' नामक हिन्दी उर्दू का (और शायद अन्य भाषाओं का भी) अस्वाभाविक और कृत्रिम मिश्रण या खिचड़ी जिसे कितनी ही भिन्न-भिन्न रुचियों अर्थात् विभिन्न प्रांतों और संप्रदायों की रुचियों के अनुकूल बनाने के लिए पकाया जा रहा है, ताकि भारत के भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी चालिस करोड़ लोग उसे राष्ट्र-भाषा रूप में स्वीकार कर लें, इस प्रात के ऊपर बतौर प्रांतीय भाषा या वर्नाक्युलर के थोप दी जायगी और 'एकता' 'मेल' आदि की दुहाई देकर इस प्रांत में शिक्षा राजकाज आदि में प्रयुक्त की जायगी और परिणाम-स्वरूप इस प्रांत की वास्तविक वर्नाक्युलर हिन्दी की और उर्दू की भी घोर हानि होगी, और आश्चर्य नहीं, यदि वह हिन्दी और उर्दू पर छा जाय और दोनों को बिलकुल ग़र्क़ कर दे।

हिन्दी संयुक्त प्रांत की और केवल संयुक्त प्रांत की (मध्य-प्रांत और पंजाब के एक भाग को छोड़कर) देशज भाषा या वर्नाक्युलर है। जब युक्त प्रांत ही 'हिन्दुस्तानी भाषी क्षेत्र' कहा जायगा (जैसा कि कुछ तथा कथित 'राष्ट्रीय' प्रकरणों में अभी से कहा जाने लगा है, प्रायः बिहार और मध्य प्रांत को भी इस 'हिन्दुस्तानी भाषी क्षेत्र' में शामिल कर दिया जाता है?)' तब भारत का कौन-सा प्रांत, कौन-सा प्रदेश 'हिन्दी-भाषी' कहा जायगा? जब संयुक्त प्रांत की जनता ही 'हिन्दुस्तानी-भाषी' कही जायगी तो भारत के कौन-से लोग 'हिन्दी-भाषी' कहे जायँगे? क्या हिन्दी-जैसी प्राचीन भाषा संयुक्त प्रांत की सरकार की क़लम के एक इशारे पर लुप्त हो जायगी? भारत के भाषा-चित्र में जिस प्रदेश पर आज तक 'हिन्दी' लिखा जाता रहा है, क्या उस पर अब 'हिन्दुस्तानी' लिखा जायगा, और क्या सब भारतीय भाषाओं में से केवल हिन्दी का नाम ढूँढ़े न मिलेगा? अत्यंत क्षोभ का विषय है कि इस समय जब कि मराठी-भाषी लोग सब मराठी भाषी प्रदेशों को मिलाकर एक करने के हेतु महाराष्ट्र-एकता-सम्मेलनों का आयोजन कर रहे हैं और विधान-परिषद् के मराठी भाषी सदस्यों को एक अखंड महाराष्ट्र के निर्माण के लिये अपनी आवाज़ बुलंद करने का आदेश दे रहे हैं, संयुक्त प्रांतीय सरकार के हिन्दी-भाषी मंत्री हिन्दी का नाम उस 'हिन्द' से मिटा रहे हैं, जहाँ की वर्नाक्युलर वह पिछले एक हज़ार साल से सारे संसार द्वारा एक स्वर से मानी जाती रही है। संयुक्त प्रांत के हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषी मंत्रियों को करना तो यह चाहिए था कि वे हिन्द-एकता-कान्फ्रेंस बुलाते और आंदोलन करते कि मध्य-प्रांत और पंजाब के हिन्दी-भाषी भाग 'हिन्दी' में मिला दिए जाएँ। परन्तु अफ़सोस! इस प्रांत में; जहाँ राजमंत्रियों से लेकर नीचे तक हर कोई प्रत्येक वस्तु राजनीति और सांप्रदायिकता के चश्मे से देखता है, जो न हो जाय, सो थोड़ा है।

यहाँ यह भली भाँति स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हम संयुक्त प्रांत में उर्दू के हितों को कोई हानि पहुँचाना नहीं चाहते। उर्दू हिन्दी का ही एक रूप है, और संयुक्त प्रांत की सरकार को स्वतंत्रता है कि वह संयुक्त प्रांत के उन लोगों को, जो उर्दू और उसकी लिपि चाहते हैं, उर्दू पढ़ने की स्वतंत्रता दे दे, उर्दू को पढ़ने-पढ़ाने या उसके माध्यम से पढ़ने-पढ़ाने की सुविधाएँ दे दे और उर्दू को भी, जैसा इस समय भी है, राजभाषा स्वीकार कर ले। सरकार चाहे तो प्रान्त के अन्य भाषा-भाषियों को भी ये ही सुविधाएँ दे सकती है, परन्तु प्रान्त की वर्नाक्लयुर वही रहना चाहिए, जो वास्तव में है, अर्थात् हिन्दी। सत्य की हत्या नहीं होनी चाहिए। उर्दू या हिन्दुस्तानी अवश्य ही इस प्रान्त की वर्नाक्युलर नहीं। एक समय आ सकता है, जब वे लोग जो उर्दू की माँग करते हैं, इस प्रान्त की वर्नाक्युलर अर्थात् अपनी असली मातृ-भाषा और उसकी स्वाभाविक लिपि को अपना लें और इस प्रकार प्रान्त में भाषा-एकता स्थापित हो जाय (जिस प्रकार पंजाब में, जहाँ इस समय उर्दू भी राजभाषा और शिक्षा का माध्यम है, एक समय आ सकता है, जब उर्दू वाले पंजाब की वर्नाक्युलर पंजाबी को, जो उनकी मातृ-भाषा है, अपना लें; मगर शर्त यह है कि पंजाब 'पंजाब' ही रहे और पंजाबी का नाम बदल कर 'हिन्दुस्तानी' या कुछ और न धर दिया जाय)। 'हिन्दी' में एकता का बीज वर्तमान है। परन्तु 'हिन्दुस्तानी' एक असत्य तो है ही, वह अपने अर्थ की अनिश्चितता और विवादग्रस्तता तथा अपने पुछल्ले 'दोनों लिपि' के कारण प्रान्त को भाषा और लिपि के मामले में मिल कर कभी एक न होने देगी, उन्नति के मार्ग में सदा के लिये बाधक बन कर खड़ी हो जायगी और इस प्रकार उसी उद्देश्य को निष्फल कर देगी, जिसे लेकर (शायद) यह असत्य प्रान्त पर थोपा जा रहा है। हम काँग्रेस से, जो अपनी सत्यनिष्ठा पर गर्व करती है, अपील करते हैं कि वह इस असत्य को, जिसके पीछे राजनीतिक अवसरवाद है, परन्तु जो स्थायी रूप से अपरिमित अन्याय और अनाचार करने में समर्थ है, दूर कर दे। उसे अपनी अटपटी 'हिन्दुस्तानी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये एक स्थान खोजने और हिन्दी को बेदखल करके हिन्दी के घर में उसे बसाने का प्रयत्न छोड़ देना चाहिए। कांग्रेस ने अपनी चुनाव-घोषणा में प्रत्येक भाषा-भाषी क्षेत्र और प्रत्येक भाषा भाषी जन-समूह की भाषा और संस्कृति की रक्षा के विषय में जो वचन दिए हैं, यदि कांग्रेस उन्हें कुछ भी महत्त्व देती है, तो उसे सांप्रदायिकता और प्रतिक्रिया-वादियों को खुश करने के पागलपन में आकर हिंदी के कम-से-कम, एक प्रांतीय भाषा के बतौर, अस्तित्व पर कुठाराघात नहीं करना चाहिए। किसी सरकार को, वह चाहे लोक-प्रिय हो, चाहे 'लोक-अप्रिय' वह कांग्रेसी हो अथवा अकांग्रेसी, इस प्रांत की वर्नाक्युलर का पुराना नाम बदलने का अधिकार नहीं है, खास तौर से तब, जब उसका प्रस्तावित नया नाम पहले से ही एक निश्चित अर्थ को व्यक्त करता है, प्रांत की बोली-विशेष और केवल एक बोली-विशेष का नाम है, और उसके साथ ऐसी नई भावनाएँ जुड़ गई हैं और जुड़ रही हैं, जो केवल अप्रिय ही नहीं है, वरन् इस प्रांत की भावी एकता और उन्नति के लिए घातक हैं।

इस प्रांत की भाषा और संस्कृति के प्रेमियों तथा प्रांत की विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं का, विशेष रूप से प्रांत की प्रमुख साहित्यिक संस्था अखिल भारतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का, आम हिन्दी-भाषी जनता का, विशेष रूप से जिन्हें गाँवों में बसनेवाली मूक जनता ने, जिसे अपनी देहाती हिन्दी छोड़कर 'हिन्दुस्तानी' या कुछ और नहीं आता, अपनी वोटें देकर प्रांतीय असेंबली में भेजा है उनका कर्तव्य है कि वे प्रांतीय सरकार के सामने इस मामले को उठाएँ और तब तक चैन न लें, जब तक इस प्रांत की वर्नाक्युलर का वास्तविक नाम 'हिन्दी' सरकारी तौर से स्वीकृत न हो जाय और सरकारी कागजों, पत्र व्यवहार' जन-गणना की रिपोर्टों, गजट, अन्य सरकारी प्रकाशनों, आदि में इस प्रांत की वर्नाक्युलर के लिये 'हिन्दी' नाम प्रयुक्त न किया जाय। 'हिन्दुस्तानी' नाम की शरारती चाल को आरंभ में ही विफल कर देना चाहिए। यदि इस अपमान-जनक शब्द 'वर्नाक्युलर' का व्यवहार तो बंद हो गया, परंतु उसके स्थान में विवादात्मक, भ्रमोत्पादक, ग़लत और खतरनाक नाम 'हिन्दुस्तानी आ बैठा, तो उससे हमें क्या संतोष होगा? हमें इस प्रांत के लिये 'संयुक्त प्रांत' के स्थान में 'हिन्द' नाम के सरकारी तौर से स्वीकृत कराने के लिये भी आंदोलन आरंभ कर देना चाहिए। 'संयुक्तप्रांत' कोई नाम में नाम नहीं। गैर-सरकारी संस्थाओं तथा राष्ट्रीय पत्रों को इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रांत की वर्नाक्युलर या देशज भाषा के लिये सदैव अनिवार्य रूप से 'हिन्दी' नाम का प्रयोग करना चाहिये और उन्हें सरकारी स्वीकृति की प्रतिज्ञा किए विना इस प्रांत के लिये 'हिंद' नाम का प्रयोग भी आरंभ कर देना चाहिए और उसे प्रचलित करना चाहिए।

श्री निवास दास पुरस्कार

ब्रज साहित्य मंडल के तत्वावधान में (सेठ रणछोड़दास बल्लभदास अजमेरा द्वारा) संस्थापित १०१) रु० का श्रीनिवासदास पुरस्कार इस वर्ष प्राचीन ग्रन्थों के सुसम्पादित संस्करण एवं स्फुट रचनाओं के संकलन पर प्रदान किया जावेगा। पुरस्कार के लिए अब से ६ वर्ष पूर्व तक की प्रकाशित पुस्तकों पर विचार किया जायगा। जो महानुभाव प्रतियोगिता में भाग लेना चाहें उनसे पुस्तकों की ६ प्रति मंडल कार्यालय में शीघ्र भेजने की प्रार्थना है। दीपावली के बाद आने वाली पुस्तकें पुरस्कार के लिए स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। प्रधानमंत्री ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा।

पुस्तक परिचय

[श्री शुकदेव चौबे एम० ए०, बी० टी०]

दर्शन और जीवन—ले० श्री सम्पूर्णानन्द जी। श्रद्धेय बाबू सम्पूर्णानन्द जी के ग्रन्थ पर कलम उठाने का अधिकार कदाचित् मेरा न हो फिर भी इसे मैंने बड़े चाव से पढ़ा है और इसके प्रति मेरे विचार पूजा के भाव से नीचे दिये गये हैं।

लेखक ने भूमिका ही में इस बात की ओर संकेत किया है कि भारत वर्ष में दार्शनिक विषयों पर लोकप्रिय ग्रन्थों का निर्माण एक प्रकार से बन्द हो गया है। एक दो विद्वान जो इधर ध्यान देते भी हैं, तो वह देशी भाषाओं में नहीं लिखते। उनकी विचार धारा से बहुधा अंगरेजी पढ़े लिखे आदमियों का ही लाभ हो सकता है। हमारे यहाँ की यह उक्ति कि भारतीय तो जन्मजात दार्शनिक होता है अब सङ्कोच और लाज का कारण हो गई है। साधारणतः लोग दर्शन का विषय अव्यवहारिक समझते हैं। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश की वर्तमान भौतिक और पार्थिव उग्र आवश्यकताओं के हाहाकार से यदि ऐसा सोचा जाय तो यह केवल हमारी अधूरी शिक्षा का ही फल है। हम जानते ही नहीं कि दार्शनिक दृष्टि कोण एवं धारणा का महत्त्व देश जाति, युग और व्यक्ति के लिए कितना व्यापक है। पाश्चात्य देशों में दर्शन पर और दार्शनिक विषयों पर छोटे बड़े सरल और कष्टबोध्य ग्रन्थ रत्न बहुत निकला करते हैं। जनता में इन ग्रन्थों का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान होना चाहिए। इन ग्रन्थों के प्रचार से लोक रुचि को वांछनीय दिशा में ले जाने में सहायता मिलती है और उसे ओछी होने से रोका जा सकता है। ऐसे कारणों से यह ग्रन्थ देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई और ऐसा लगा कि राष्ट्रभाषा भण्डार के इस अभाव की जो अब तक बहुत खटकने की वस्तु रही है पूर्ति होने का पथ-प्रदर्शन होने जा रहा है।

जिसे कोरा दर्शन कहकर नाक भौंह सिकोड़ा जाता है उसका न सही कम से कम इस बात का आदर प्रत्येक समझदार आदमी करेगा ही कि बिना सैद्धान्तिक-भित्ति के विचार परम्परा स्थापित ही नहीं हो सकती और यदि कोई विचार धारा चले भी तो वह अन्धप्राय रहेगी। अतएव दर्शन की और दार्शनिक विषयों के अध्ययन की उपयोगिता उसी प्रकार सिद्ध है जैसे मीमांसात्मक विचारशैली की मार्मिकता एवं सर्वग्राहिता। किन्तु खेद की बात है कि हमारे देश में दर्शनशास्त्रों को उनकी इस वेदी से च्युत कर दिया गया है। साधारण जीवन में दार्शनिक एक दम पागल नहीं तो विचित्र प्राणी तो समझा ही जाता है। पाठ्य क्रम में भी सभी विद्याओं और विषयों के "सम्मिलन क्षेत्र" में दर्शन का स्थान गौण ही है। हमारे विश्व-विद्यालयों में वही विद्यार्थी दर्शन लेता है जो दूसरे किसी विषय में पास होने की आशा नहीं करता। अपनी रुचि और प्रवृत्ति से प्रेरित होकर विषय विशेष का पठन और मनन तो हमारी शिक्षा प्रणाली से लुप्त वस्तु हो गया है। ऐसी परिस्थिति में इस प्रकार के लोकबोध्य ग्रन्थों की सृष्टि सर्वथा वांछनीय ही नहीं प्रत्युत देश और जाति की समीचीन उन्नति के लिए आवश्यक है। और हम श्रद्धेय बाबू साहब का, जो देश के नेताओं में है, इस क्षेत्र में नेतृत्व ग्रहण करने के लिए स्वागत करते हैं।

इस पुस्तक में दर्शन के विषय को तीन खण्डों में बाँटा गया है—सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम्—यह इसकी विशेषता है। साधारणतः दर्शन में जगन्मूल कोई पदार्थ है या नहीं, यदि है तो उसका स्वरूप एवं स्वभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या है, और यदि नहीं है तो प्रतीति की जननी कौन वस्तु है और इसकी उत्पत्तिविधि क्या है, इन्हीं प्रश्नों का विवेचन किया जाता है और इन्हीं प्रश्नों के उत्तर देने के प्रयत्न को दर्शन का प्रधान विषय ही नहीं समझा गया है, प्रत्युत यह धारणा भी है कि इसके अतिरिक्त हमारे जीवन क्षेत्र की किसी और बात से अथवा प्रश्न से दर्शन का कोई सम्बन्ध नहीं होता। लेखक महानुभाव इस बात को भ्रामक और दर्शन के विद्यार्थियों के दृष्टि-कोण के लिये घातक सकझते हैं। दर्शन के विषय का यह वर्गीकरण हमारी परम्परा के सर्वथा अनुकूल है। इस बात को ध्यान में रखकर दार्शनिक बातों के मनन करने से दर्शन शुष्क और अव्यावहारिक नहीं रह जायगा। फिर इन तीनों खण्डों में जो विवेचन दिया गया है उनके बीजमन्त्र स्वरूप हमारी संस्कृति के तीन मूलमंत्र रखे गये हैं। सत्यम्-खण्ड का वोज मंत्र तो असतो मासद्गमय, शिवम् का मृत्योर्मामृतंगमय और सुन्दरम् का तमसो-माज्योतिर्गमय इससे तो इस ग्रन्थ को एक विशेष गौरव मिल गया है।

लेखक महोदय एक विज्ञानवेत्ता हैं और इस ग्रन्थ में विशेष कर उन्होंने सत्यम् खण्ड में अपनी वैज्ञानिक पहुँच का उपयोग किया है। इस प्रकार दार्शनिक प्रणाली की सार्वभौम क्रिया का स्पष्टीकरण होता है। इस खण्ड के समन्वय प्रकरण में लिखा है—"गणित, भौतिक विज्ञान और योग शास्त्र, तीनों ही भौतिक जगत के मूल स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं। यदि चरम सिद्धान्तों पर दृष्टि डाली जाय तो यह प्रश्न उठेंगे—क्या जिस मूल शक्ति का भौतिक विज्ञान प्रतिपादन करता है वह वही पदार्थ है जो मनोविज्ञान में चेतना और जीव शास्त्र में जीव के रूप में हमारे सामने आता है? क्या योगी को इसी का अनुभव होता है? क्या योगी अन्तःकरण को एकाग्र करके दिक्काल और सम्बन्धों को जो अन्तःकरण के ही धर्म और प्रसूति हैं अपने ज्ञान का विषय बनाता है और इस प्रकार जगत के रहस्य को बोध गम्य करता है? क्या वह चित्त की वृत्तियों को निरुद्ध करके इस जगत का अतिक्रमण करता है? क्या कोई एक सत्य वस्तु है जो नाना होकर हमको प्रतीत होती है? यदि यही बात है तो उसका स्वरूप क्या है?" दर्शन से इन सब प्रश्नों के समाधान की अपेक्षा रखते हैं। साथ ही साथ इस बात का ध्यान भी रखना चाहिये कि दर्शन का ध्येय वर्णन ही नहीं है, वरन् सत्य का अनुभव एवं साक्षात्कार भी है। यहीं पर पाश्चात्य प्रणाली और भारतीय दर्शन परम्परा में पार्थक्य स्पष्ट हो जाता है। पाश्चात्य प्रणाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से हम उपेक्षा रख सकते हैं किन्तु दर्शन के भारतीय आदर्शों से मुँह तब तक नहीं मोड़ सकते जब तक हम अपने प्रति ईमानदारी करते हैं। यहां जिस मत की ओर संकेत किया गया है उसके अनुसार दार्शनिक को "बहुश्रुत होने के साथ ही सत्य-साक्षात्कृत" भी होना चाहिए।

शिवम् और सुन्दरम् खण्डों में जिस प्रकार की विवेचना कर्तव्याकर्तव्य विवेक और सौन्दर्यानुभूति का निरूपण करते हुए दी गई है उससे भारतीय दार्शनिक मीमांसा के सामने एक नई बात का उल्लेख किया गया है और उसकी आवश्यकता एवं उपयोगिता की ओर निर्देश किया गया है। इससे हमें यह सन्देश लेना है कि जैसे शिवम् और सुन्दरम् क्षेत्रों में प्रयुक्त हुए बिना दर्शन व्यर्थ और अव्यावहारिक रह जाता है वैसे ही कर्तव्याकर्तव्य बुद्धि या सौन्दर्य विवेक अर्थात् दार्शनिक दृष्टिकोण के स्पष्टीकरण मात्र हैं—चाहे हमारे सामने वह दृष्टिकोण चेतना में विद्यमान हो किसी विशेषदार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार अनुशीलन एवं क्रिया प्रणाली में अपने समीचीन स्थान पर यह भी आ जाय अथवा अलक्ष्यरूप से वह हमारे जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनी व्यापकता के कारण छाप डालता हो।

यहाँ तक इस ग्रन्थ रत्न के गुणों की चर्चा की गई।

अब हम एक दो दोषों की चर्चा करने की धृष्टता भी करेंगे। किन्तु यह भी श्रद्धेय लेखक महानुभाव के प्रति श्रद्धाञ्जलि स्वरूप। अतएव इसके लिए हम कोई क्षमा-याचना भी नहीं करते। इस पुस्तक के अन्त में एक उपसंहार भी समाविष्ट है। सत्यम् खण्ड के अन्त में कुछ प्रश्न उठाये गये थे—जड़ से चेतन की उत्पत्ति कैसे होती है? उत्पन्न होकर क्या चेतन नष्ट हो जाता है? जो पूर्ण है उसमें लीला करने की इच्छा क्यों हुई? जीवन संवरण करने की इच्छा क्यों होती है? यह स्वतन्त्र है कि परतन्त्र? माया चिद्वस्तु से भिन्न कैसे है? इत्यादि। ये प्रश्न मूल प्रश्न हैं और दर्शन को इनका समाधान करना ही है। और भिन्न-भिन्न दार्शनिक इन प्रश्नों का भिन्न-भिन्न उत्तर भी देते हैं। उपसंहार प्रकरण में इस बात की ओर संकेत किया गया है; किन्तु इस पुस्तक के नाम से इस बात की आशा उत्पन्न हुई थी कि इस बात का निरूपण मिलेगा कि किस प्रकार के समाधान का शिवम् और सुन्दरम् के क्षेत्र में क्या प्रभाव पड़ेगा, अथवा दार्शनिक विशेष की जीवन की विविध समस्याओं की ओर कैसी प्रवृत्ति होती है? किन्तु यह आशा आशा ही रह गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ छपाई सम्बन्धी त्रुटियां भी हैं और इनके लिए श्री परिपूर्णानन्द वर्मा को कोई बहाना नहीं हो सकता; यह इसलिए की यदि मेरा अनुमान ठीक है, तो यह लेखक महानुभाव के भाई हैं। इनका प्रथम कर्त्तव्य था इस पुस्तक को पूर्णरूपेण निर्दोष करके प्रकाशित करना। अंगरेजी की पुस्तकें आप पढ़ जाइए, शायद ही एक दो जगह छपाई की त्रुटियां मिलेंगी। हिन्दी में अभी वह बात खाली विचार की वस्तु है। किन्तु ऐसे ग्रन्थों के विषय में छपाई सम्बन्धी शुद्धता की बड़ी आवश्यकता है? इस ग्रन्थ में जो अशुद्धियां हैं उनकी वजह से अर्थ का अनर्थ तो एकदम नहीं होता किन्तु अर्थ समझने में अड़चन होती है।

गीतादर्शन की पृष्ठभूमि—ले० श्री सत्यदेव शास्त्री, प्रकाशक साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग। प्रथम संस्करण। मूल्य १॥), पृष्ठ संख्या ११२, छपाई सफाई उत्तम।

जैसा कि नाम से ही प्रकट है, प्रस्तुत पुस्तक में शास्त्री जी ने सात अध्यात्रों में गीता के दार्शनिक विचारों का विभिन्न दृष्टियों से सूक्ष्म विश्लेषण किया है और उसमें सर्वत्र मानव के यथार्थ जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली स्थितियों की स्थापना की है। उच्च गीता के आदर्शों की परीक्षा भी उन्होंने प्रस्तुत की है, जिसे यथार्थ जीवन में आविष्ट करने की ओर उनका संकेत है। गीता के व्यवहारवाद की विवेचना में उन्होंने पिछले भाष्यकारों की गृहीत शैली में नवीन उद्भावनाओं की सृष्टि की है, जो बहुत ही युक्तियुक्त, विचारपूर्ण और उपादेय है। गीता के प्रतिपाद्य ज्ञान, भक्ति एवं कर्म योग मार्गों की विस्तृत समीक्षा में शास्त्री जी अपनी सहज बोधगम्य किन्तु प्रकरण वश सूक्ष्म एवं गम्भीर शैली द्वारा पाठकों की जिज्ञासाओं की तुष्टि करते चलते हैं। उनका गीता पर विशेष अधिकार है, और उन्होंने इस उपयोगी पुस्तक में विशेष भी सफलता प्राप्त की है। गीता के तत्त्व जिज्ञासुओं के अतिरिक्त यह पुस्तक उन लोगों की भी विशेष उपकारी होगी, जो गीता के आदर्शों पर नवीन सामाजिक व्यवस्था का स्वप्न देखते हैं।

रामप्रताप त्रिपाठी

वैशाली—(ऐतिहासिक ग्रन्थ) लेखक आचार्य जैनाचार्य श्री विजयेन्द्र सूरि, प्रकाशक नार्दर्न इण्डिया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली। प्रकाशन का समय सं० २००३ वि०, मूल्य १), पृष्ठ संख्या ४२।

वैशाली भारत के प्राचीन प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थानों में एक महत्त्वपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान रखती है। वैदिक, बौद्ध और जैन दृष्टिकोण से भी इसका अधिक महत्त्व है। प्रस्तुत पुस्तक में श्री सूरि जी ने जैन धर्माचार्य श्री महावीर स्वामी-के जन्म-स्थान क्षत्रिय कुण्ड (वैशाली) का विस्तृत विवेचन बड़ी विद्वत्ता के साथ किया है। पुस्तक को भली-भाँति पढ़ने के पश्चात् आधुनिक बसाढ़ और वासुकुण्ड को प्राचीन वैशाली और क्षत्रिय कुण्ड स्वीकार करने में कोई आपत्ति शेष नहीं रह जाती। अपने कथन की प्रामाणिकता के लिए विद्वान् लेखक ने शास्त्रों, शिलालेखों और चीनी यात्री फाहियान, ह्वेनसांग के लेखों का सहारा लिया है और इस प्रकार की अनेक सामग्री जुटाकर इतिहास और पुरातत्त्व-वेत्ताओं एवं जैनियों के लिए एक नए स्थान की ओर अधिक खोज होने के लिए अवसर प्रदान किया है। पुस्तक उपयोगी एवं पठनीय है।

वीर-विहार मीमांसा—(ऐतिहासिक ग्रन्थ), लेखक जैनाचार्य श्री विजयेन्द्र सूरि प्रकाशक श्री विजयधर्म सूरि, समाधि मन्दिर, शिवपुरी (ग्वालियर राज्य) प्रकाशनका समय सं० २००३, मूल्य ॥ पृष्ठ संख्या ३२।

जैन मतावलम्बियों में श्री महावीर स्वामी का विहार क्षेत्र पश्चिम भारत जनश्रुति एवं किंवदंतियों के अनुसार माना जा रहा है। विद्वान्-लेखक ने शास्त्रों, शिला लेखों और यत्र-तत्र प्राप्त अनेक सामग्रियों के बल पर प्रचलित उक्त प्रवाद का बड़े अधिकार के साथ खंडन कर पूर्व भारत की ओर सब का ध्यान आकृष्ट किया है। पुस्तक इतिहास-जिज्ञासुओं एवं जैनियों के लिए उपयोगी है।

अधूरी नारी—मौलिक सामाजिक उपन्यास। लेखक श्री उदयराज सिंह, प्रकाशक राज राजेश्वरी-साहित्य-मन्दिर, सूर्यपुरा, शाहाबाद (बिहार) प्रकाशन का समय सन् १९४६ ई० सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) पृष्ठ सं० २६८।

आधुनिक नारी-स्वातंत्र्य युग में हमारे समाज की कितनी ही गृह देवियों की मनोवृत्ति पाश्चात्य संस्कृति के ऊपरी चटक-मटक एवं फैशन से प्रभावित हो कर पूर्णतया विदेशी होती जा रही है। ये देवियाँ अपने सौन्दर्य, फैशन, चमत्कार और स्वतन्त्रता के प्रवाह को चिरकाल तक अक्षुण्ण रखने का भगीरथ प्रयत्न करती हैं और भारत के चिरन्तन नारीत्व के प्रतीक पातिव्रत एवं मातृ रूप को अपनी स्वतंत्रता में बाधक और रूढ़ि समझ उसे तोड़ देने में ही अपना श्रेय तथा उन्नति समझती हैं, परन्तु वासना-मय प्रेम की मृग-तृष्णा के साथ बहुत दूर तक जा कर और अपने इस रूप को जीवन के अंतिम काल में असमर्थ पाकर भारतीय मनोवृत्ति की समर्थक हो जाती हैं। इस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसीदास जी की यह उक्ति 'समय चूकि पुनि का पछिताने,' के अनुसार पछतावा ही उनके गले पड़ता है। लेखक ने अपनी प्रतिभा एवं कल्पना के बल से उपर्युक्त प्रकार की रमणियों का वास्तविक चित्र अंकित कर अपने कौशल को प्रकट किया है। भावुकता के प्रवाह के साथ ही साथ लेखक ने गम्भीर विचारों का भी आश्रय लिया है। भाषा भाव के अनुरूप है। पात्र और वातावरण को सजीवता प्रदान करने में लेखक का परिश्रम स्तुत्य है। पुस्तक महिलाओं के लिए विशेष उपयोगी है।

चवन्नी वाले— (कहानी-संग्रह) लेखक श्री सन्तोषनारायण नौटियाल प्रकाशक-निष्काम प्रकाशन, निष्काम प्रेस, मेरठ प्रकाशन का समय १६४६ ई० मूल्य १॥) पृष्ठ संख्या १५४ छपाई सफाई उत्तम।

श्री संतोष नारायण नौटियाल ने अपनी इन तेरह मौलिक कहानियों को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते हुए लिखा है। छोटी से छोटी घटनाओं का दृश्य-चित्र पाठकों के हृदय-पटल पर कुछ देर के लिए अंकित हो उठता है संग्रह की दो एक कहानियाँ उत्तम हैं और पाठकों पर एक प्रभाव छोड़ जाने में समर्थ हैं। किन्तु प्रयत्न अभी नया है, अच्छा होता यदि कुछ दिनों की साधना के बाद वह प्रकाश में आने को उत्सुक होता।

नरक का कीड़ा (कहानी-संग्रह) लेखक श्री अरुण, प्रकाशक निष्काम प्रकाशन निष्काम प्रेस, मेरठ। प्रकाशन का समय १६४६ ई० मूल्य १॥) पृष्ठ संख्या १४१। छपाई सफाई उत्तम।

श्री अरुण जी ने इस संग्रह में मानव-जीवन की झांकी को यथार्थ-रूप में अंकित करने का प्रयत्न किया है। इस प्रयत्न में लेखक को कुछ सफलता भी प्राप्त हुई है पर प्रयोग अभी मँजा नहीं है। सामाजिक दुर्बलताओं का चित्रण सुन्दरता के साथ हुआ है, पात्रों में सजीवता भी दृष्टिगोचर होती है परन्तु स्थान-स्थान पर अँग्रेज़ी कविता और शब्दों का प्रयोग बहुत खटकता है, भविष्य में लेखक को इस प्रकार की प्रवृत्ति से बचने का प्रयत्न करना चाहिए।

सदानन्द मिश्र 'साहित्यरत्न'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातक

[प्रथम द्वितीय तथा तृतीय खण्ड]

अनुवादक : भदन्त आनन्द कौसल्यायन

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जयचन्द्रविद्यालंकार का कथन है कि "विश्व के वाङ्मय में 'जातक' जन-साधारण की सब से पुरानी कहानियाँ हैं; मनोरंजकता, सुरुचि, सरलता, आडम्बरहीन सौन्दय और शिक्षाप्रद होने में उनका मुकाबला नहीं हो सकता। ये बच्चों के लिये सरल और आकर्षक, जवानों और बूढ़ों के लिये भी रुचिकर और विद्वानों के लिये प्राचीन भारत के जीवन का जीता-जागता चित्रण करने के कारण अत्यन्त मूल्यवान हैं।"

प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या ५४०, डिमाई साइज; सजिल्द मूल्य ७॥)
द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या ४६४, डिमाई साइज; सजिल्द मूल्य ७॥)
तृतीय खंड, पृष्ठ संख्या ४४८, डिमाई साइज; सुन्दर जिल्द मूल्य १०)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अभूतपूर्व प्रकाशन

प्रेमघन-सर्वस्व

(प्रथम भाग)

'दो शब्द'-लेखक, माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन
परिचय-लेखक, स्वर्गीय आचार्य पंडित रामचंद्र शुक्ल
आधुनिक हिन्दी के एक निर्माता, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति, स्वर्गीय उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का विशाल संग्रह-ग्रंथ।
हिन्दी में प्रथम और अपूर्व काव्य। लेखक के चित्रों से सुसज्जित और सजिल्द। मूल्य ६)

साहित्य मंत्री—हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० ए० ३२५

...त्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्त...

तुलसीदुर्लभ साहित्यमाला

भारत-गीत ≡)
१ राष्ट्रभाषा ।।)
३ शिवाबावनी ≡)
४ पद्मावत पूर्वार्द्ध १), १।)
५ सूरदास की विनयपत्रिका ≡)
६ नवीन पद्यसंग्रह १।)
७ बिहारी-संग्रह ≡)
८ सती कणकी ।।)
९ हिन्दी पर फारसी का प्रभाव ।।≤)
१० ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार १।)

(२) साधारण पुस्तकमाला

१ अकबर की राज्यव्यवस्था ३)

(३) वैज्ञानिक पुस्तकमाला

१ सरल शरीर-विज्ञान ।।।) १।।)
२ प्रारम्भिक रसायन १।)
३ सृष्टि की कथा १।।)

(४) बाल-साहित्य माला

१ बाल नाटक-माला ।)
२ बाल-कथा...ग २ ।≤)
३ बाल विभूति ≡)
४ वीर पुत्रियाँ ।≤)

(५) नवीन पुस्तकें

१ सरल नागरिक शास्त्र ४)
२ कृषि प्रवेशिका १।)
३ विकास (नाटक) ।।≤)
४ हिंदू-राज्य शास्त्र ५)
५ कौटिल्य की शासन-पद्धति १।≤)
६ गावों की समस्यायें १)
७ मीराँबाई की पदावली ३)
८ भट्ट निबंधावली १।) १।।)
९ बंगला-साहित्य की कथा १।।)
१० शिशुपाल बध १।।)
११ ऐतिहासिक कथायें ।।।)
१२ दमयन्ती स्वयंवर ।।)

नवीन पुस्तकें

१—मैथिली लोकगीत—रामइकबालसिंह 'राकेश', भूमिका लेखक—पण्डित अमरनाथ झा ४)
२—गोरखबानी—स्व० डाक्टर पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ३)
३—दीवाली और होली—(कहानी संग्रह) श्री इलाचन्द्र जोशी १।।)
४—महावंश—भदन्त आनन्द कौसल्यायन ४)
५—भोजपुरी लोकगीत में करुणरस—श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह ६)
६—स्त्री का हृदय—(एकांकी नाटक) श्री उदयशंकर भट्ट १।।)
७—राजस्थानी लोकगीत—स्व० सूर्यकरण पारीक १।।)
८—सामान्य भाषाविज्ञान—डा० बाबूराम सक्सेना ६)
९—काव्यप्रकाश—मम्मटाचार्य, अनुवादक स्व० हरिमंगल मिश्र ६)
१०—समाचार पत्र शब्दकोष—डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी० १।।)

प्रकाशक—श्री रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।
मुद्रक : श्रीगिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मुख-पत्रिका

श्रावण—भाद्रपद २००२

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मेलन पत्रिका श्रावण-भाद्रपद २००३

सम्पादक—श्री रामचन्द्र टंडन

विषय सूची

आचार्य सायण और माधव

लेखक श्री बलदेव उपाध्याय, एम० ए० साहित्याचार्य

आचार्य सायण और माधव भारतीय संस्कृति के गौरव-स्तम्भ वेदों के सुप्रसिद्ध भाष्यकार थे। वेदों के गूढ़ मन्त्रों पर यदि इनके भाष्य उपलब्ध न होते तो उनके अर्थों की प्राचीन परम्परा आज विलुप्तप्राय हो जाती। दोनों आचार्यों के उक्त भाष्य का माहात्म्य तो आज सब से अधिक है, क्योंकि गूढ़ वेदमंत्रों के अर्थों के समीप पहुँचने का कोई भी साधन हमारे पास इस वैज्ञानिक युग में नहीं है। प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं आचार्यों के आदर्श जीवनचरित के साथ साथ इनकी विविध प्रवृत्तियों और सेवाओं पर भी खोजपूर्ण प्रकाश डाला गया है। विद्वान् और अधिकारी लेखक ने आज तक प्राप्त होने वाली समस्त सामग्रियों का इसमें यथास्थान उपयोग किया है। पुस्तक प्रणयन की शैली इतनी सरल आकर्षक और भावपूर्ण है कि साधारण से साधारण पाठक भी उक्त गूढ़ विषयों के समीप तक आसानी से पहुँच सकता है। पृष्ठ संख्या २२० डिमाई साइज आकर्षक जिल्द का मूल्य ६)

साहित्य मंत्री—हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग ३३, संख्या १०-११ : श्रावण-भाद्रपद २००३

सम्मेलन-पत्रिका

राष्ट्रभाषा के विकास में प्रगति कैसे हो !

[श्री ओंमप्रकाश सिंह, एम० ए०]

भाषा का सम्बन्ध मानव समाज से है, अतएव मानव समाज के विकास से भाषा में भी विकास होता है। इस विकास की गति अविदित रूप से निरन्तर चलती रहती है। परन्तु भाषा की इस प्रकार अविच्छिन्न धारा के होने पर भी यह नहीं समझना चाहिए कि वह ज्यों की त्यों एक ही रूप में रहती है। जिस प्रकार सरिता की धारा अविच्छिन्न होने पर भी आगे बढ़ने के साथ-साथ बदलती जाती है, इसी प्रकार भाषा की परम्परा एक रहने पर भी धीरे-धीरे स्पष्ट रूप से बदलती जाती है। कालान्तर में वही भाषा इतनी परिवर्तित हो जाती है कि उसके पूर्व रूप को जाननेवाला उसके दूसरे रूप को आसानी से नहीं समझ सकता। यह भेद एकाएक नहीं हो जाता। वरन् उसमें थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन सदा ही होता रहता है। भाषा की परिवर्तित परिस्थितियों के सहारे हम अपने समाज की परिवर्तनशील प्रवृत्ति ही का नहीं, अपनी संस्कृति का भी परिचय पाते हैं।

किसी भू-भाग में भाषा के दो रूप आप से आप हो जाते हैं क्योंकि सर्व-साधारण की भाषा में और सभ्य पढ़े-लिखे लोगों की भाषा में भेद रहा करता है। सभ्य समाज की भाषा परिष्कृत एवं परिमार्जित होकर साहित्यिक हो जाती है, परन्तु जन साधारण की भाषा सरल और स्वाभाविक होती है। कोई सर्वसाधारण की भाषा प्राचीन परिष्कृत भाषा से नहीं निकलती उसका निकास प्राचीन सर्वसाधारण की भाषा से ही समझना चाहिए। परिष्कृत भाषा साहित्यिक रूप धारण कर लेती है जिसमें कृत्रिमता आ जाती है। जब बोलचाल की भाषा में साहित्य रचना होने लगती है तो जन-साधारण फिर एक नवीन भाषा का प्रयोग करते हैं। साहित्य रचना और जन-साधारण की भाषा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही पारस्परिक वैषम्य भाषा के परिवर्तित होने का रहस्य है। व्याकरण, वाक्य-विन्यास, शब्दों का स्वरूप, शब्दों का अर्थ बहुत कुछ बदल जाता है। नये शब्द या तो उसी भाषा के आधार पर बनाए जाकर या दूसरी भाषाओं से लिए जाकर प्रयोग में आने लगते हैं।

प्राचीन आर्यों की भाषा का रूप ऋग्वेद से ज्ञात हो सकता है। वेद की भाषा तो जन-साधारण की अन्य भाषाओं में से एक भाषा रही होगी, जिसके साहित्यिक रूप में वेद का सम्पादन हुआ होगा। इसी वेदकालीन भाषा का अधिक परिमार्जित स्वरूप संस्कृत भाषा के रूप में स्थिर हुआ। संस्कृत के बाद उसका सर्वप्रथम रूप हमें अशोक के शिला-लेखों और बौद्ध तथा जैन धर्म ग्रन्थों में मिलता है। ५०० ई० पू० के बाद प्राचीन प्राकृत को पाली नाम दिया गया। पाली में भी साहित्यिक गाम्भीर्य आने के कारण उसी के साहचर्य से निकली हुई साधारण भाषा हमारे सामने मध्यकालीन प्राकृत के विशिष्ट रूप में आती है। जब साहित्य का निर्माण इन प्राकृतों में होने लगा और वैयाकरणों ने इन्हें व्याकरण के कठिन नियमों में बांधना आरम्भ कर दिया तो जन-साधारण की भाषा में इस साहित्यिक प्राकृत से फिर अन्तर होना आरम्भ हुआ। ईसा की तीसरी शताब्दी में अपभ्रंश आभीर आदि निम्न जातियों की भाषा का नाम था, जो सिंध और उत्तरी पंजाब में बोली जाती थी। इन विदेशियों में आभीरी नामक एक समुदाय था जिसने सिंध पर विजय प्राप्त की, बाद में गुजरात और राजपूताना भी इनके अधिकार में चला आया। सातवीं शताब्दी में इन लोगों का अधिकार पांचाल तक हो गया। फल स्वरूप इन लोगों की भाषा जो अपभ्रंश के नाम से प्रसिद्ध है राजभाषा हुई और उसका प्रचार इनके विजित प्रदेश में ही नहीं वरन् उसके बाहर भी स्थान विशेष की भाषा के आधार पर होने लगा। दशवीं शताब्दी में यह भाषा अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँची और इसका प्रचार पश्चिम में सिंध से लेकर पूर्व में मगध तक और दक्षिण में सौराष्ट्र तक हो गया। जन-साधारण की बोली प्राकृत के साहित्यिक कारागार से निकलने का प्रयत्न करने लगी तो प्राकृत के वैयाकरणों ने उसे हीन दृष्टि से देखते हुए अपभ्रंश नाम दे दिया। आभीरों की भाषा के रूप में ऐसी भ्रष्ट हुई प्राकृत का इससे अच्छा नाम हो ही क्या सकता था। इसी अपभ्रंश ने हिन्दी में परिवर्तित होना सम्वत् ७०० के आस-पास आरम्भ कर दिया था।

यदि ऋग्वेद की एक ऋचा को, किसी ब्राह्मण ग्रन्थ के एक वाक्य को,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाल्मीकि-रामायण के एक श्लोक को, धम्मपद के एक पद को, किसी संस्कृत नाटक की एक प्राकृत गाथा को, रामचरित मानस की एक चौपाई को और मैथिली शरण गुप्त एवं पंत के एक पद्य को लेकर उनकी भाषा की तुलना करें तो यह तुरन्त स्पष्ट हो जावेगा कि भाषा में कितने परिवर्तन होते रहे हैं। इन परिवर्तनों के होते हुए भी एक आन्तरिक साम्य की अन्तर्धारा प्रवाहित होती हुई दृष्टिगत होती है वह स्पष्ट बतलाती है कि उच्चारण में भेद आ सकता है, व्यंजनों के क्लिष्ट संयोगो को सरल संयोगों में बदला जा सकता है, परन्तु उनके द्वारा सांस्कृतिक भाव वहन का कार्य रोका नहीं जा सकता। शब्दों के उच्चारण तो यदा तदा बदल गए परन्तु वह भाव जो वैदिककाल में शब्द विशेष वहन करते थे आज भी उसी रूप से अक्षुण्ण हैं। उदाहरण के लिए—

वैदिक संस्कृत	संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
देवाः	देवाः	देओ	देवता
यदि	यदि	जइ या जदि	यदि
अरि	शत्रु	०	शत्रु
०	सकल	सअल	सकल
अग्नौ	अग्नौ	अग्गि	अग्नि

इन शब्दों पर विचार करने पर प्रत्यक्ष हो जाता है कि शब्दों का निर्माण जानबूझ कर किसी उद्देश्य विशेष से कभी नहीं होता वरन् वह तो स्वभावतः ही घिस मज कर पैतृक सम्पत्ति के रूप में हमें मिलते हैं। यही कारण है कि सभी भारतीय भाषाओं का उद्गम स्थान संस्कृत होने के कारण उन सभी में साम्य है। उदाहरण के लिए हिन्दी के "है" शब्द ही को लीजिए। उसकी संस्कृत का रूप 'अस्ति' हिन्दी में है, बंगला आसामी में आछे, मैथिली में आछि, गुजराती में छे, मराठी में आहे, ब्रजभाषा में है हो जाता है। इस परिवर्तन के लिए चेष्टा विशेष नहीं की जाती वरन् वह देश, काल और व्यक्ति के भेद से स्वभावतः होता है। इसी कठोर सत्य का अनुभव करके भारत के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री० शचीन्द्रनाथ सान्याल ने हिन्दी के विकास की विवेचना करते हुए लिखा था कि विधिपूर्वक किसी विशेष संकल्प के अनुसार संगठित रूप से प्रचार के परिमाण में राष्ट्रभाषा का उद्भव नहीं हुआ करता। नाना रूप घटनाचक्र के आवर्त में पड़कर अवस्था विशेष के प्रयोजन के अनुसार कल्पनातीत योग सूत्र में बंधकर, प्राकृतजनों के विभिन्न प्रदेशों में आनेजाने के कारण एक नवीन भाषा की जो नींव पड़ती है उसी के आधार पर भविष्य में जाकर एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन भाषा का उद्भव होता है। वह मनीषी व्यक्तियों की साधना से, कवि जनों की प्रेरणा से, साहित्य रसिकों के रस सिंचन से ही सजीव, लचकदार और भाव विनिमय की आधारभूत हो जाती है। बीज जैसे लोक चक्षु के अन्तराल में रहकर भूमि के स्तर के नीचे ही नीचे नवीन वृक्ष को जन्म देता है और जैसे उस जन्म क्षण को कोई जान नहीं पाता, उसी प्रकार नवीन भाषा के अनिवार्य प्रसार को आरम्भ में कोई जान नहीं पाता।

हिन्दी ने भी सब के अगोचर में अपनी जड़ को समस्त भारत में प्रसारित कर रक्खा है। इसका अव्यर्थ परिणाम यही हुआ है कि जब भारत के विभिन्न प्रान्तों के निवासी मिलते हैं तो वह टूटी-फूटी हिन्दी में वार्तालाप द्वारा काम चलाते हैं। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास आदि व्यापारिक मंडियों में जाकर देखा जाय तो प्रगट हो जायगा कि बंगाली, पठान, पंजाबी, बर्मी, नैपाली, मुलय द्वीप निवासी, तामिल, तेलुगु, कन्नाडी भाषा-भाषी, गुजराती और मराठी सभी बिना किसी प्रचार समिति के उपयोग के ही अशुद्ध हिन्दी में बातचीत किया करते हैं। जिन स्थानों पर बहुभाषा-भाषी एकत्रित होते रहे हैं उन सब ही स्थानों में स्वतः टूटी-फूटी हिन्दी बोलचाल की भाषा बन गई है।

हिन्दी एक व्यापक और सार्वजानिक भाषा है जो राष्ट्र के प्रत्येक कोने में बोली और समझी जाती है। हिन्दी अपनी सरलता के कारण सबके मुंह चढ़ चुकी है वह भारत के ६० प्रतिशत ग्रामीण जनता की भाषा है। हिन्दी ही सारे देश के सामाजिक और आर्थिक व्यवहार पूरे कर सकती है और कर रही है। इनसे परे एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि उसमें हमारी संस्कृति निहित है।

भाषा और संस्कृति में बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। मनुष्य ज्यों-ज्यों उन्नत होता है त्यों-त्यों उसके आचार विचारों में परिवर्तन होता जाता है। इसी क्रमिक उन्नति से परिवर्तित और परिशोधित आचार-विचारों का नाम संस्कृति है। प्रत्येक देश की परिस्थितियों के अनुसार ही लोगों में रुचि विशेष का संचार और पोषण होता है। इन्हीं चित्तवृत्तियों का जब स्पष्टीकरण भाषा द्वारा किया जाता है तब ही साहित्य का निर्माण होता है। अतः किसी देश का साहित्य वहाँ की जनता की संचित चित्तवृतियों का प्रतिबिम्ब होता है यह एक स्वयंसिद्ध सिद्धान्त है। किसी जाति के जीवन का सब से बड़ा चिह्न उसका साहित्य होता है। सहित्य का निर्माण उस समय तक असम्भव है जबतक कि भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्याप्त रूपेण विकासोन्मुख न हो । भाषा एक ऐसी लड़ी है जो लाखों और करोड़ों नर-नारियों को एकसूत्र में आबद्ध कर देती है । किसी जाति की भाषा का अभाव उस जाति की मृत्यु है ।

किसी देश की संस्कृति और सभ्यता पर धर्म का थोड़ा बहुत प्रभाव अवश्य रहता है । धर्म विशेष के आने से उस देश की संस्कृति बदल नहीं सकती । भारत सदा धर्म प्रधान देश रहा है । इसी कारण भारतीय साहित्य दार्शनिक सिद्धान्तों में संसार भर में बढ़ा-चढ़ा है । जितनी ईश्वर-भक्ति और मननशीलता के विचार हमारे साहित्य में प्राप्त हैं और किसी साहित्य में उपलब्ध नहीं हो सकते । हमारे साहित्य की विशेषता धार्मिकत्व की प्रचुर परिमाणता है । कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी साहित्य में हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्म के साथ-साथ देश और काल की छाप भी विद्यमान है । जो अतीतकाल से अक्षुण्ण चली आ रही है । उस पर राजनैतिक उद्देश्य से किसी और धर्म की संस्कृति लाद देना अनधिकार चेष्टा होगी । साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में हिन्दी-उर्दू मिलन असम्भव है । दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है । हिन्दी लिपि और शब्द-समूह वैदिककाल से लेकर अबतक की भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत हैं । उर्दू लिपि, शब्द-समूह तथा साहित्यिक आदर्श हिन्दी प्रदेश में अभी कल आए हैं और अभारतीय दृष्टिकोण से लबालब हैं । भारतीयों की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक भाषा केवल हिन्दी है । यदि हिन्दी की सांस्कृतिक महत्ता का विचार छोड़ भी दिया जाय तो भी वह अपनी क्षमता अपनी महत्ता और शालीनता के बलपर राष्ट्रभाषा के पद से हटाई नहीं जा सकती ।

इसी सांस्कृतिक भिन्नता का अनुभव करते हुए डा० मौलवी अब्दुल हक को उर्दू के सम्बन्ध में लिखना पड़ा था कि उर्दू ही एक ऐसी भारतीय भाषा है जो मुस्लिम संस्कृति और मुस्लिम मनोवृत्ति से आवृत्ति है तथा उनके इतिहासिक और धार्मिक तत्त्वों को व्यक्त करती है । वास्तव में उर्दू के अस्थिपंजर में हिन्दी और संस्कृत की गंध होना सम्भव है, परन्तु यह भी एक कटु सत्य है कि उस अस्थिपंजर पर चढ़ी मांस पेशियां तथा त्वचा विदेशी तत्त्वों से बनी हैं । फल यह है कि यह भाषा मृत देह के समान है, जिसका भविष्य अत्याधिक संदिग्ध हैं, अतः उर्दू भारत के आदिम निवासी हिन्दुओं के मानसिक विकास के विपरीत है । इसी हेतु हिन्दू मस्तिष्क उर्दू भाषा का दिग्गज पण्डित न हो सका । उर्दू के चक्कर में पड़ा हिन्दू किसी ओर का न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा। न उसे हिन्दी ही श्राई न उर्दू। बहुत से हिन्दुओं ने इस उर्दू के मरु स्थल में अपनी सारी शक्ति लगाकर साहित्य सेवा रूपी बीज बोए, परन्तु फल कुछ न निकला। उर्दू के महारथियों में उनकी गणना न हो सकी। मुं० ज्वालाप्रसाद 'बर्क', मुं० दुरगासहाय 'सरूर', मुं० नौबतराय 'नज़र', मुं० जगत मोहन लाल 'रवां' वफ़ा, बहार, दीवाना, परवाना, रुसवा, राक़िम, सबा, दिलगीर, फ़रहत आदि आदि वे लोग जिन्होंने अपनी सारी आयु इसी में खपाई, परन्तु कोई भी उर्दू का माननीय कवि तक न समझा गया। मौ० मुहम्मद हुसेन 'आज़ाद' ने एक पुस्तक उर्दू कवियों के जीवन और समालोचना पर लिखी है। उसमें मीर, जाहक़, जानजाना, मज़हर हुदहुद जैसे कवियों का तो वर्णन है जिनके दो एक शेरों के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता; परन्तु किसी हिन्दू कवि का कोई वर्णन नहीं है, केवल दयाशंकर 'नसीम' का नाम पाया जाता है और उनका भी वर्णन पांच पंक्तियों में दिया है। वह भी आबेहयात की प्रथम आवृत्ति में न था बाद को किसी विशेष मन्तव्य से प्रविष्ट कर लिया गया है। प्रेमचन्द्र जी की ख्याति उस समय तक हुई जब तक वह उर्दू में लिखते रहे और हिन्दी में पदार्पण करते ही हिन्दी संसार ने उन्हें सर पर उठा लिया। सत्य है मोर के पंख लगाने से ही किसी का मान नहीं हो सकता। अतः कहना पड़ता है कि विदेशी रज से उद्‌भूत, फ़ारसी, अरबी जल वायु में पोषित उर्दू भारतीय जनों की भावना का स्पष्टीकरण नहीं कर सकती इसलिए वह भाषा जो किसी देश के निवासियों के विचार और भावनाओं का स्पष्टीकरण नहीं कर सकती राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती।

कुछ राजनीति विशारद भारत की स्वाधीनता के राग अलापते अलापते उसमें इतने मग्न हो गये हैं कि वह भाषा के स्वाभाविक विकास को भुलाकर एकता की बलि वेदी पर हिन्दी की सुन्नत करके हिन्दुस्थानी गढ़ने जा रहे हैं। उनका कथन है कि जितने अरबी और फारसी के शब्दों का समावेश हिन्दी में हो सकेगा उतनी ही व्यापक और प्रौढ़ भाषा हो सकेगी। यह ठीक है कि किसी भाषा को व्यापक बनाने के लिए अन्य भाषा के शब्दों को लेना पड़ता है, परन्तु यह शब्द उसी समय लिए जाते हैं जब उनकी शुद्धि उस भाषा के व्याकरण से कर ली जाती है। इसके अतिरिक्त उन्हीं शब्दों को साहित्य में प्रवेश करने दिया जाता है जिनका अभाव कोष में रहता है। हिन्दुस्थानी का निर्माण भाषा विकास के सिद्धान्त के विरुद्ध है। वह तो राजनैतिक मत-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालापन है। जिस प्रकार एक नया हिन्दुस्थानी नेशन हिन्दू मुस्लिम एकता के द्वारा स्थापित करने का सुख स्वप्न अवास्तविक एवं असम्भव है उसी प्रकार हिन्दू मुस्लिम के ऐक्य से उद्भूत हिन्दुस्थानी भाषा का निर्माण कोरी मृग-तृष्णा है उससे होना कुछ नहीं है। इतिहास इस विषय में साक्षी है।

ऐक्य की खूंख्वार देवी ने सदा हिन्दू का ही खून पिया है और वर सदा विपक्षियों को ही दिया है। हिन्दू ने इस ऐक्य के चक्कर में पड़ कर सदा कुछ न कुछ खोया ही है। इस भाषा ऐक्य स्थापन से हम अबाध रूप से प्रवाहित होने वाली भाषा-सरिता पर बांध लगा कर उसे थोड़ी देर के लिए चाहे शिथिल कर दें, परन्तु वह इस बंधान में बँध नहीं सकती। नदी के बहाव के विरुद्ध नौका खेने से हमारी नौका की गति तो धीमी पड़ सकती है परन्तु सरिता का प्रवाह रुक नहीं सकता। अतः स्पष्ट है कि भाषा प्रवाह पर हिन्दुस्थानी के बंधान उसकी प्रचार गति को धीमा कर सकते हैं, परन्तु उसे विकृत नहीं कर सकते। सम्भव है। कि हम अपने साहित्य को विकृत कर अपनी संस्कृति को नष्ट कर दें, अपने आदर्शों को भुला कर अपने धर्म से पतित हो जाएँ, अपने को अवनत एवं चरित्रहीन कर लें, परन्तु स्वच्छन्द भाव से प्रवाहित भाषा-नद के प्रवाह में प्रतिरोध नहीं डाल सकते। फिर क्यों न हम भी ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर दें कि वह नद अवरुद्ध हुए बिना अधिक तीव्रता से अपनी स्वच्छन्द दिशा की ओर प्रवाहित हो। तात्पर्य यह की राष्ट्र भाषा के विकास में प्रगति लाने के लिए हमें उसे मूल स्रोत संस्कृत से ही बलशाली एवं सम्पन्न करना होगा मुट्ठी भर अल्प संख्यकों को प्रसन्न करने के लिए हमें अपने ऊपर कुठाराघात करना उचित नहीं। जब परिस्थितियां हमारे अनुकूल होंगी तो वह स्वयं ही अनिवार्य रूपेण हिन्दी का अध्ययन करने पर बाधित होंगे। हिन्दी कौन पढ़ता है ? हिन्दू। और वह भी अल्प (?)संख्या में। उर्दू का भार वहन कौन करता है ? हिन्दू और बहु संख्या में। इसी बहु संख्या को हमें हिन्दी की ओर प्रेरित करना है। मुसलमान न हिन्दी पढ़ता है और न पढ़ेगा। यदि वह कभी हिन्दी पढ़ेगा तो मजबूर हो कर। इस तत्त्व को अधिक स्पष्ट करने के लिए मुझे वह समय याद आ जाता है जब सर सैयद अहमद खां ने अलीगढ़ यूनिवर्सिटी स्थापित की थी। उस समय सारे ही मौलवी अंग्रेज़ी अध्ययन के विरुद्ध थे, उन्होंने सैकड़ों फतवे सर सैयदअहमद खां के विरुद्ध निकाले, उन्हें काफिर कहा और कुफ्र का प्रचारक घोषित किया। परन्तु काल का चक्र भी अद्भुत है, समय ने अंगरेज़ी पढ़ने की आवश्यकता का अनुभव करा दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आज सभी सर सैयदअहमद द्वारा प्रशस्त मार्ग पर दौड़ लगाते दृष्टि गत हो रहे हैं। यही बात हिन्दी के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है जो हमारे विरोधी आज मुंह फेरे दूसरे मार्ग पर चले जा रहे हैं जब देखेंगे कि वह मार्ग आगे अवरुद्ध है, वह आगे न जा सकेंगे। वह हमारे सामने झुकेंगे और हमसे समझौता के लिए उससे भी अधिक लालायित होंगे जितने कि आज हम हैं। जो वस्तु आज हमें कोरा चेक और पूरा सेब देकर दुर्लभ हो रही है स्वयमेव ही अल्प प्रयास के बिना प्राप्त हो जावेगी। समय आने दीजिए और आवश्यकता अनुभव होने दीजिए।

हिन्दी का जन्म युद्ध-स्थल में हुआ था राज महलों की कोमल सेजों पर नहीं। जिस समय देश की शान्ति रक्तधारा में बही जा रही थी राजनैतिक क्षेत्र में विप्लव हो रहा था, इसलिए साहित्यिक क्षेत्र में भी शान्ति नहीं रही। कवि अपनी वीरोल्लासिनी कविताओं से देश को गुंजरित करने लगे। ऐसे भयावह समय में जब कि हिन्दुओं का भी अस्तित्व संदिग्ध था, हिन्दी ने हिन्दू संस्कृति को मर-पिचकर अक्षुण्ण रक्खा। तभी तो आज भी हम हिन्दी को भारतीय संस्कृति का वाहक समझते हैं। वेदों से लेकर रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों आदि के विचार सार, कथाएँ, मुहावरे सब हिन्दी के द्वारा हम दिन रात बोलते और सुनते हैं। वह हिन्दू की अपनी चीज़ है और हिन्दू की तरह प्रत्येक कठिनाई को सहन करने में पूर्ण समर्थ है। उसके घेरे में दूसरों को लाने का व्यर्थ प्रयत्न न करना चाहिये। यदि सब हिन्दू उसको अपनाएँगे, उसका अव्यर्थ परिणाम यही निकलेगा कि जो लोग आज इससे भड़कते हैं, उसको अपनाने पर वाधित हो जावेंगे। राजनीति और भाषा दोनों का क्षेत्र अलग है। एक में दूसरे को बरबस मिलाने से हानि अलबत हो सकती है, लाभ नहीं।

हिन्दी ने जब ही पालने से पांव निकाले कि उसका विरोध आरम्भ हो गया। मुग़ल दरबार के वातावरण में पोषित फ्रांसीसियों और अंग्रेज़ों ने फ्रांस और इंगलैंड से हिन्दी के विरोध में कई लेख भी लिखे। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की स्थापना से सर सैय्यदअहमद खाँ को कितनी उत्तेजना हुई थी, इसका विवरण हमें हयाते-जावैद से प्राप्त होता है। यहाँ तक उन लोगों से विरोध की बात रही, जिनको हमारे धर्म, हमारी संस्कृति आदि से वैमनस्य धार्मिक एवं राजनैतिक दृष्टिकोण से होना ही चाहिए। इन सज्जनों से हमें विरोध न करने की आशा रखना ही मूर्खता है; परन्तु आश्चर्य हमें उस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है, जब नई हिन्दुस्थानी राष्ट्रीयता के प्रतिपादक साम्यवादी रंग में रँगे साम्प्रदायिक न कहलाए जाने की लालसा से, अपनी निष्पक्षता दिखलाने के लिए हमारे ही बन्धु विरोध का झण्डा खड़ा करते हैं। इन महापुरुषों का मत है कि हिन्दी भाषा को शक्तिशाली बनाना या न बनाना बिना लाभ हानि का खेल मात्र है। उनका विश्वास है कि हिन्दू उर्दू के बिना अधूरी रह जावेगी। जिस प्रकार राजनीति के क्षेत्र में दाढ़ी-चोटी सम्मेलन हुए बिना हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन नहीं कराई जा सकती। इन राष्ट्रीय पुजारियों से मेरा नम्र निवेदन है कि वह राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए चाहे कुछ भी करें; परन्तु भाषा के मार्ग में वह अपनी टाँग न अड़ाएँ, यह उनके क्षेत्र से बाहर की चीज़ है। इस बेचारी को आत्म-निर्णीत मार्ग पर प्रवाहित होने दीजिए, वह स्वयं अपना मार्ग प्रशस्त कर लेगी।

जब तक युद्ध का ढिंढोरा पिट रहा है, काग़ज़ की महँगाई, छपाई की कठिनाइयाँ, यातायात की रुकावटें हिन्दी के प्रचार को गति नहीं दे सकते, फिर भी हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से कुछ होना नहीं है। हमें चेष्टा करनी चाहिए कि इस प्रकार की रूपरेखा तैयार की जावे और उस ओर क़दम बढ़ाया जावे। संक्षेप में रूपरेखा दी जाती है—

१—रेडियो के अधिकारियों पर जनमत के द्वारा प्रभाव डाला जावे कि वह हिन्दी विरोधी नीति का अन्त कर सरल, बोधगम्य राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रयोग करें, जो सारे ही राष्ट्र की एकमात्र भाषा है। इसके लिए एक कमेटी कुछ सज्जनों की निर्मित कर दी जाय, जो निरन्तर इस आन्दोलन को उस समय तक संचालित करते रहें, जब तक इस क्षेत्र में सफलता न मिल जाय। एक विशेष दिन निश्चित कर लिया जाय, जो रेडियो की इस नीति की निन्दा करने के लिए सारे भारतवर्ष में मनाया जाय।

२—चित्रपटों के दर्शकों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। अतः इस ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। हिन्दी प्रचारक संस्थाओं को चित्रपट व्यवसाय की संगठित संस्था से सहयोग करना और उसे उचित परामर्श देना आवश्यक है।

३—स्थान-स्थान पर हिन्दी-प्रचार-मण्डल आरम्भ किए जाय, जो साप्ताहिक बाजारों में वाचनालय खोलें और स्थानीय मेलों के अवसरों पर हिन्दी-सम्मेलन के अधिवेशन कराएँ और उनके साथ पुस्तक प्रदर्शिनी, व्याख्यान, संगीत, चित्रपट और नाटक आदि के द्वारा हिन्दी प्रचार करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—विभिन्न स्थानों पर संग्रहालय, पुस्तकालय स्थायी एवं चल वाचनालय भी हों। जहां चल पुस्तकालय न हो सकें वहां हिन्दी प्रेमियों तक पुस्तकें देने की व्यवस्था की जानी चाहिए। हमें नवयुवकों में पुस्तकालय बनाने का व्यसन पैदा करना ही चाहिये और ऐसे पुस्तकालयों के लिए साहित्य-सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी आदि हिन्दी प्रचारक संस्थाओं से प्रोत्साहन भी मिलना चाहिए। एक साइकिलिस्ट ७०० वर्ग मील में सरलता से चल कर पुस्तकालय का संचालन कर सकता है।

५—चार आने की पुस्तक भी मंगाने पर आठ आने से भी अधिक में पड़ती है, फल यह होता है कि ग़रीब ग्रामीण मन मार कर बैठ रहते हैं और पुस्तकें ठीक प्रकार नहीं मँगा सकते, इसके लिए प्रयत्न यह करना चाहिए कि मासिक पत्रिका के रूप में पुस्तक माला का प्रकाशन हो और निश्चित समय पर प्रकाशक को चंदा और ग्राहक को पुस्तक मिल जाया करे, इस प्रकार वी० पी० पोस्टेज कम हो जावेगा।

६—विदेशों में हिन्दुस्थानी के नाम से उर्दू का प्रचार हो रहा है अतः सभी हिन्दी प्रचारक संस्थाओं का कर्तव्य है कि वह प्रेरणा करें कि विभिन्न विश्व विद्यालयों में विदेशी भाषाओं के विद्वान अपनी भाषा हमें सिखाएं और हम भी अपने विद्वानों को विदेशों में अपनी भाषा सिखाने के लिए भेजें। इस प्रकार आर्य-संस्कृति में दीक्षित चीन और जापान आदि में भी हमारी भाषा और संस्कृति का विकास होगा।

७—चेष्टा करनी चाहिये कि शिक्षा का माध्यम हिन्दी रहे इसके लिए हमें अध्यापकों का सहयोग अनिवार्य रूपेण लेना पड़ेगा क्योंकि इन्टर और हाई स्कूल में हिन्दी उर्दू माध्यम हो जाने पर भी अध्यापक गण एवं विद्यार्थी समुदाय लाभ नहीं उठा रहा है अतः अध्यापकों में प्रचार करना चाहिए कि वह हिन्दी को ही अपना माध्यम बनाएं। और हमें यह भी चेष्टा करनी चाहिए कि विश्वविद्यालय हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बना लें इसके लिए महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी से विशेष रूप से प्रार्थना करनी चाहिए कि वह पथ प्रदर्शक बनें।

८—हिन्दी अध्यापकों का वेतन बढ़ना चाहिये और उनका पद और सारे अध्यापकों के समान ही समझा जाना चाहिए। क्या यह ठीक नहीं है कि हिन्दी एम० ए० को उतनी ही चेष्टा करनी पड़ती जितनी इतिहास अथवा अंग्रेजी एम० ए० को। इसके लिए सारी ही हिन्दू जाति को प्रयत्नशील होना पड़ेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—विभिन्न स्थानों पर संग्रहालय, पुस्तकालय स्थायी एवं चल वाचनालय भी हों। जहां चल पुस्तकालय न हो सकें वहां हिन्दी प्रेमियों तक पुस्तकें देने की व्यवस्था की जानी चाहिए। हमें नवयुवकों में पुस्तकालय बनाने का व्यसन पैदा करना ही चाहिये और ऐसे पुस्तकालयों के लिए साहित्य-सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी आदि हिन्दी प्रचारक संस्थाओं से प्रोत्साहन भी मिलना चाहिए। एक साइकिलिस्ट ७०० वर्ग मील में सरलता से चल कर पुस्तकालय का संचालन कर सकता है।

५—चार आने की पुस्तक भी मंगाने पर आठ आने से भी अधिक में पड़ती है, फल यह होता है कि ग़रीब ग्रामीण मन मार कर बैठ रहते हैं और पुस्तकें ठीक प्रकार नहीं मँगा सकते, इसके लिए प्रयत्न यह करना चाहिए कि मासिक पत्रिका के रूप में पुस्तक माला का प्रकाशन हो और निश्चित समय पर प्रकाशक को चंदा और ग्राहक को पुस्तक मिल जाया करे, इस प्रकार वी० पी० पोस्टेज कम हो जावेगा।

६—विदेशों में हिन्दुस्थानी के नाम से उर्दू का प्रचार हो रहा है अतः सभी हिन्दी प्रचारक संस्थाओं का कर्तव्य है कि वह प्रेरणा करें कि विभिन्न विश्व विद्यालयों में विदेशी भाषाओं के विद्वान अपनी भाषा हमें सिखाएं और हम भी अपने विद्वानों को विदेशों में अपनी भाषा सिखाने के लिए भेजें। इस प्रकार आर्य-संस्कृति में दीक्षित चीन और जापान आदि में भी हमारी भाषा और संस्कृति का विकास होगा।

७—चेष्टा करनी चाहिये कि शिक्षा का माध्यम हिन्दी रहे इसके लिए हमें अध्यापकों का सहयोग अनिवार्य रूपेण लेना पड़ेगा क्योंकि इन्टर और हाई स्कूल में हिन्दी उर्दू माध्यम हो जाने पर भी अध्यापक गण एवं विद्यार्थी समुदाय लाभ नहीं उठा रहा है अतः अध्यापकों में प्रचार करना चाहिए कि वह हिन्दी को ही अपना माध्यम बनाएं। और हमें यह भी चेष्टा करनी चाहिए कि विश्वविद्यालय हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बना लें इसके लिए महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी से विशेष रूप से प्रार्थना करनी चाहिए कि वह पथ प्रदर्शक बनें।

८—हिन्दी अध्यापकों का वेतन बढ़ना चाहिये और उनका पद और सारे अध्यापकों के समान ही समझा जाना चाहिए। क्या यह ठीक नहीं है कि हिन्दी एम० ए० को उतनी ही चेष्टा करनी पड़ती जितनी इतिहास अथवा अंग्रेजी एम० ए० को। इसके लिए सारी ही हिन्दू जाति को प्रयत्नशील होना पड़ेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आन्दोलन खड़ा करना पड़ेगा।

९—कोर्स की पुस्तकें केवल साहित्य सेवियों की चुनी जावें जिनकी वृत्ति केवल साहित्य सेवा है। जो अन्य प्रकार से अपना भरण पोषण कर सकते हैं उनकी पुस्तकें कोर्स के लिए न चुनी जानी चाहिए। तभी साहित्य सेवा की ओर अधिक सज्जन अग्रसर हो सकेंगे।

१०—विविध विषयों के विद्वानों की संस्थाएं स्थापित की जावें जो चिट्ठी पत्री द्वारा परामर्श दें और पारिश्रमिक नाम मात्र को लेकर उनके लेखों में संशोधन करें और उनके प्रकाशन की व्यवस्था करा दें। आरम्भ में हिन्दी प्रेमी ही इन का आयोजन करें जो पारिश्रमिक की परवाह न करें।

११—हिन्दी विद्यापीठों की स्थापना की जाय। इसमें कभी कभी वेतन भोगी और अधिकतर स्वयंसेवक शिक्षक का काम करें। इनको ट्रेनिंग दी जाय और हृदयंगम करा दिया जाय कि राष्ट्रभाषा प्रचार राष्ट्रीय एवं ईश्वरीय कार्य है। क्योंकि भाषा की उन्नति केवल जातीय उन्नति के मार्ग की एक मंज़िल है जो मानसिक उन्नति से सम्बन्ध रखती है। इसके शिक्षक यथासम्भव सभी सहायताएं परीक्षार्थियों को देने की चेष्टा करें। वह घूम फिर कर सप्ताह में १०-१२ पाठ चारों ओर पढ़ा दें। यहां भारतीय इतिहास का अध्ययन विशेष रूप से कराया जाय।

१२—गर्मियों की छुट्टियों में हिन्दी के उत्साही विद्यार्थी एवं अध्यापक ग्रामों में एकत्रित हों और अध्यापन कार्य सम्पन्न करें। इन दिनों यात्रा और भ्रमण का प्रबन्ध किया जाय। यह मण्डलियां प्राचीन ऐतिहासिक कथाएं कहें और जातीय नाटकों के द्वारा जातीयता को उद्दीप्त करें।

१३—प्रतिवर्ष वार्षिक अधिवेशन, कवि-सम्मेलन, जातीय त्योहार एवं महापुरुषों की जयंतियां मनाई जायँ और पारितोषिक वितरण किए जायँ। उच्च-कोटि के साहित्यिक नाटक तथा वीर चरितावलियां अधिक संख्या में वितरित की जायँ। विजय कहानियां एकत्रित की जायँ। जनश्रुतियों और गल्पों के अप्राप्य अंशों की उत्कण्ठा बढ़ाई जाय।

इस प्रकार हम देखेंगे कि अल्पकाल में ही देशवासियों की एक बहुत बड़ी संख्या हिन्दी सीख जावेगी जिससे उसमें जातीय विचारों और आत्म-गौरव का उदय होगा। और हिन्दू-राष्ट्र के सभी कण्टकों के नष्ट हो जाने से सब तरह की उन्नति और अभ्युदय के सामान आप ही आप आ उपस्थित होंगे जिससे राष्ट्र का कल्याण होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला का मनोविज्ञान

[श्री लालजीराम शुक्ल एम. ए. बी. टी.]

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कला क्या है ? इसका निर्माण किस हेतु होता है कौन-सी उत्तेजनाएँ कला-निर्माण में काम करती हैं ? उसका मनुष्य के मानसिक जीवन में क्या मूल्य है ? इन प्रश्नों पर कम विचार किया गया है। अंग्रेजी साहित्य में इन प्रश्नों पर अवश्य कुछ विचार पाया जाता है पर यह विचार प्रायः एकांगी ही है। मनोविश्लेषक वैज्ञानिकों ने कला पर विचार किया है। मनोविश्लेषण विज्ञान के प्रणेता जड़वादी थे, अतएव कला पर विचार भी जड़-वादी दृष्टि कोण से हुआ है जिस मनोवृत्ति से कला का निर्माण होता है उसके साथ आत्मसात करके कला पर विचार विरले ही मनोवैज्ञानिकों ने किया है।

मनोविश्लेषण विज्ञान के अनुसार मनुष्य के दलित मनोभावों का मनोहर रूप में प्रकाशित करना कला है। जो मनोभाव कलाकार की मनोवृत्ति के प्रेरक होते हैं वे साधारणतः अनैतिक होते हैं; पर कला के रूप में प्रकाशित होने पर वे मान्य बन जाते हैं। साधारणतः मनुष्य अपने नैतिक भावों को अपनाता है और अनैतिक भावों को चेतना की सतह पर आने से रोकता है। उन्हें क्रूरता पूर्ण ठुकराकर चेतना की मंच-शाला से निकालकर बाहर कर देता है। प्रत्येक मनोभाव चेतना के समक्ष आना चाहता है और सब से अपनी आत्मस्वीकृति कराना चाहता है। हमारा स्वत्व उन्हीं मनोभावों को अपनाता है जिन्हें कि वह नैतिक अर्थात् भले समझता है, जिन भावों को वह अनैतिक अथवा बुरे समझता है उनके प्रति वह आत्मस्वीकृति नहीं देता। इस प्रकार ये तिरस्कृत भाव मनुष्य की चेतना की सतह के नीचे चले जाते हैं। जब वे मनुष्य के स्वत्व के शत्रु बन जाते हैं और चेतना की मंचशाला को नष्टभ्रष्ट करने की ही चेष्टा करने लगते हैं। मनुष्य का चेतन मन इन्हें सदा दबाने की चेष्टा करता रहता है। इससे बहुत-सी चेतना मन की शक्ति का अपव्यय करती हैं और उसके व्यक्तित्व के प्रभावशाली होने में बाधा पहुँचाती हैं। जैसे यदि किसी राज्य में बहुत से विद्रोही हों तो राज्य की अधिकांश शक्ति उनके दमन में ही खर्च हो जाती है और राज्य कोई रचना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्मक कार्य नहीं कर पाता, इसी तरह जिस मनुष्य के मन में अनेक दलित मनोभाव हैं वह संसार में जब कोई बड़ा काम करना चाहता है तो वह अपने आप को असमर्थ पाता है। किसी भी बड़े काम करने के लिये इतना ही आवश्यक नहीं कि मनुष्य उसे अपने विवेक से भला समझ कर करना चाहे, वरन् उसके लिये पर्याप्त मानसिक शक्ति की आवश्यकता भी है। यह मानसिक शक्ति मनुष्य को तभी प्राप्त हो सकती है जबकि उसके स्वत्व की दलित मनोभाव भी सहायता करें। वे उसके शत्रु न रहकर मित्र बन जावें।

अब इन मनोभावों को मित्र बनाने के लिये उनका प्रकाशन होने देना ही आवश्यक है। इनके सामान्य रूप से प्रकाशित होने से व्यक्ति और समाज को हानि हो सकती है। जब इन मनोभावों का कला के रूप में प्रकाशन होता है तो इससे किसी की क्षति नहीं होती। इस प्रकार मनोविश्लेषण विज्ञान के अनुसार कला मनुष्य के दलित मनोभावों के रेचन का उपाय है। इससे उनका शोधन भी होता है। इन मनोभावों का कला के द्वारा इतना रूपान्तर हो जाता है कि उन्हें हम पहचान भी नहीं सकते।

एक बार लेखक ट्रेनिंग कालेज की रंगशाला में बैठा कुछ बालिकाओं का अभिनय देख रहा था। इन में एक अभिनय मीरा के जीवन का था। इसमें दिखाया गया था कि भगवत्प्रेम के कारण राणा ने मीरा का तिरस्कार किया था। मीरा अपने निश्चय पर दृढ़ रही। एक दिन राणा को उसके सामने नतमस्तक होना पड़ा और जब उसने उसे फिर वापस घर ले जाना चाहा तो वह उसे न मिली, वह कृष्ण रूप बन गई। इस दृश्य को देखते समय मेरे एक मनोवैज्ञानिक मित्र ने मुझसे पूछा—क्या आप बता सकते हैं कि आजकल की शिक्षित युवतियों में मीरा की जीवनी इतनी प्रचलित क्यों है। मैंने कहा संभव है भारतवर्ष में भक्तिभाव की एक लहर चल पड़ी है। उन्होंने तुरन्त कहा कि इन युवतियों में जड़वाद के लिये ही श्रद्धा पाई जाती है, यहाँ भक्ति भाव की प्रबलता कैसे हो सकती है। पीछे उन्होंने ही बताया कि मीरा का अभी देखा हुआ दृश्य शिक्षित युवतियों की पति को नीचा दिखाने की मनोभावना को कला के रूप में व्यक्त करता है। जिन कथानकों में पति को पत्नी देवता रूप मानती है ऐसी कथाओं का अभिनय महिलाओं द्वारा कम किया जाता है। सती, सीता, सावित्री की कथायें इस समय की शिक्षित युवतियों में उतनी प्रचलित नहीं हैं जितनी कि पति को छोड़नेवाली अथवा पति को नीचा दिखानेवाली कथाओं का। जिस मनोभाव का नैतिक दृष्टि से बहिष्कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है जो सामाजिक दृष्टि से निन्दनीय है वही मनोभाव कला के रूप में प्रकट होकर सबको मान्य हो जाता है। यह मनोविश्लेषण विज्ञान की दृष्टि है।

पर जब हम यह कहते हैं कि कला के द्वारा बहुत से अनैतिक भाव प्रकट होते हैं तो हमें यह न भूल जाना चाहिये कि उनसे इन भावों का शोध होता है। कला अनैतिक भावों को मनोहर रूप में व्यक्त करने के कारण त्याज्य नहीं मानी जा सकती। अनैतिक भावों के व्यक्त होने से मनुष्य के व्यक्तित्व को लाभ अवश्य होता है। इससे उसका मानसिक अंतरद्वन्द्व मिट जाता है। उसके जीवन की वीभत्सता रस में परिणत हो जाती है।

मान लीजिये कि शिक्षित युवतियों में पुरुष को अथवा अपने ही पति को नीचा दिखाने का भाव वर्तमान है। अब यदि वह कला के रूप में व्यक्त नहीं होता तो वह नष्ट तो नहीं होता। इस भाव के कहते हुये उसे किसी प्रकार भी आत्मस्वीकृति न मिलने पर वह हिस्टीरिया, अनिद्रा, अकारण-भय आदि मानसिक बीमारियाँ उत्पन्न करेगा। इस भाव के कला के रूप में व्यक्त होने पर उसकी अनर्थ करने की शक्ति क्षीण हो जाती है और व्यक्ति के चित्त में आह्लाद उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण वह संसार के अनेक रचनात्मक कार्य कर सकता है। अतएव प्रत्येक प्रकार की कला मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य मात्र के लिये लाभकारी है। इससे कलाकार का मानसिक लाभ होता है और जो व्यक्ति कलाकार से अपना आत्मसात करके कला के रस का आस्वादन कर सकते हैं उनका भी मानसिक लाभ होता है।

कला है ही क्या ? कला की एक परिभाषा यह है। संसार की असुन्दरता को छिपाने का नाम कला है। यह एक प्रकार का छल है जो वीभत्स है दोषमय है, त्याज्य है, उसे आकर्षित रूप देना यही तो कला है। विश्वामित्र का मन लुभाने के लिये मेनका सुन्दर रूप धरकर आती है। इसी प्रकार अनेक तपस्वी कला के द्वारा पथभ्रष्ट हो जाते हैं। जिस संसार को वे त्याज्य समझकर जंगल में भाग जाते हैं वे फिर उसी में फंस जाते हैं। कलाकार माया के अंग हैं। जो उसके मोह का आचरण मनुष्यों की बुद्धि पर डालते हैं। इस विचार के अनुसार कला का पारदर्शी ही सराहनीय व्यक्ति है जो कला के भेद को समझ जाते हैं। उसे ही हमें सजग अथवा विवेकी मानना चाहिये।

जब हम कला को इस दृष्टि से देखते हैं तो विज्ञान को कला का विरोधी पाते हैं। कला के प्रेमी लोग कभी भी कला तथा कलाकार का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पसन्द न करेंगे। मनोविज्ञान कला का विश्लेषण करके कला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पीछे छिपी हुई वीभत्स भावना को प्रत्यक्ष कर देता है। फ्रायड महाशय के कथनानुसार अधिकतर कला की रचनाओं के पीछे काम-भावना ही काम करती है। कला इस काम-वासना को छिपे हुए रूप में प्रकाशित करती है।

उपर्युक्त दृष्टि जड़वादी है। यह शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि है। विज्ञान जड़वाद के ऊपर नहीं उठा अतएव कोई भी वैज्ञानिक कला में कोई रहस्यमयी भाव नहीं पावेगा। फ्रायड महाशय के अनुसार सभी रहस्यमय बातों के पीछे काम वासना छिपी हुई है। रहस्यवाद इस दृष्टि से काम वासना को गुप्त रूप से प्रकाशन करने का एक उपाय है।

लेखक इस दृष्टिकोण को दूषित मानता है। लेखक के अनुसार संसार में व्यापक सौन्दर्य को व्यक्त करने के कौशल का नाम कला है। कवि और कलाकार का कर्तव्य असुन्दरता दर्शाना है। वह ऐसा करने में कोई छल नहीं करता वरन् सत्य को प्रदर्शित करता है जो अन्यथा हमारे दृष्टि कोण से ओझल रहता है। संसार के सभी पदार्थों का उदय उस तत्त्व से हुआ है जो कि सभी प्रकार की सुन्दरता का मूलस्रोत है। जो स्वयं सुन्दर है वह अपने ही उत्पन्न पदार्थ को असुन्दर कैसे बना सकता है। हम अपनी अविद्या के कारण इस व्यापक सौन्दर्य को नहीं देख पाते। हम उसी सौन्दर्य को देखते हैं जो कि किसी प्रकार से हमारे स्वार्थों की पूर्ति करता है अर्थात् सापेक्ष सौन्दर्य को देखते हैं। अपने स्वार्थों के परे सौन्दर्य को देखने की शक्ति साधारण मनुष्यों में नहीं होती। यह शक्ति कलाकार में होती है। इस सौन्दर्य को मनुष्य के सामने व्यक्त करना ही कलाकार का ध्येय होता है।

कारलाइल महाशय का कथन है कि कवि नाम रूप में छिपे हुये परम तत्त्व को मनुष्यों को दर्शाने की चेष्टा करता है वह मानो आगे पड़े हुये पर्दे को अलग कर देता है ताकि सभी लोगों को उसकी झांकी मिल जाय। सभी जगह परमात्मा है। दोष किसी पदार्थ में न होकर हमारी दृष्टि में है, हमारे नीच भाव जब किसी पदार्थ पर आरोपित हो जाते हैं तो हम उस पदार्थ को बुरा देखने लगते हैं। कलाकार अपनी कृति द्वारा हमारे अज्ञात दूषित भावों को शुद्ध करने की चेष्टा करता है। इन भावों के शुद्ध हो जाने से जहाँ हम घृणास्पद वस्तु देखते थे वहाँ सुन्दर वस्तु दिखाई देने लगती है। इस तरह कलाकार संसार की मौलिक सेवा करता है। यदि संसार से कला उठ जाय तो संसार की हरियाली और अनेक फूल फल ही नष्ट हो जाएँ तथा सब कुछ शुष्क बन जाय। संसार में जितनी सुन्दरता हम देखते हैं वह हमारी कल्पना की ही सुन्दरता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और यह कल्पना की सुन्दरता केवल कलाकार की देन है।

कला संसार के त्याज्य पदार्थों के प्रति हमारा प्रेम बढ़ाती है वह उन भावनाओं का नियंत्रण करती है जो संसार का विध्वंस करते हैं और उनकी वृद्धि करती है जो उसकी रक्षा करते हैं। मनुष्य जीवन प्रेम, उदारता, करुणा आदि मनोभावों से बढ़ता है। कला इन्हीं भावों को दृढ़ करती है।

कलाकार का मन निर्मल होता है। कला का भाव दूषित मनोभावों को परिष्कृत कर देता है। वास्तव में कोई मनोभाव अपने आप में शुद्ध और अशुद्ध नहीं है। मनोभावों की शुद्धि और अशुद्धि उसके उपयोग और संगति पर निर्भर करती है। जो मनोभाव परमात्मा पर अर्पित कर दिया जाता है वह परिष्कृत और शुद्ध समझा जाता है। इसके प्रतिकूल जिस मनोभाव में परमात्मा अथवा प्रेम का अभाव पाया जाता है वही दूषित है। जिस कृति से मनुष्य के मन में किसी विशेष प्रकार के लोगों के लिये अथवा प्राणी मात्र के लिये प्रेम की वृद्धि होती है वह कला कही जा सकती है। जहाँ प्रेम है वहीं सुन्दरता है। प्रेम की दृष्टि का नाम सुन्दरता है।

कला से मानसिक स्वास्थ्य-लाभ होता है। कला चाहे वह किसी रूप में प्रकट हो मनके ऊपर वही प्रभाव डालती है जो सुरीला राग का प्रभाव होता है। जब मनुष्य को मानसिक बेचैनी होती है और वह मन ही मन किसी संगत पद राग को गुनगुनाने लगता है तो उसकी बेचैनी शान्त हो जाती है। डाक्टर युंग अपने मानसिक रोगियों को मनमाने चित्र बनाने का आदेश करते थे। इस चित्रकारी के निर्माण से उनके मानसिक रोगों का निवारण होता था और स्वास्थ्य में सहायता होती थी। यदि यह बात रोगियों के विषय में सत्य है तो सामान्य पुरुषों के विषय में सत्य क्यों नहीं ?

कला इस प्रकार से मनुष्यों के मनको सुखी, स्वस्थ, और सुन्दर बनाने का एक साधन है।

ब्रज की बोली और ब्रजभाषा

श्री किशोरीदास वाजपेयी

साहित्य-रसिकों से ब्रजभाषा की माधुरी छिपी नहीं है। हिन्दी में महा कवि सूरदास आदि ही नहीं, महात्मा तुलसीदास-जैसे रामभक्तों ने भी टकसाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रजभाषा में कविता की है। महाराष्ट्र और बंगाल गुजरात में ही नहीं, दक्षिण भारत (मद्रास) तक में व्रजभाषा-कवि हुए हैं। किसी समय यही राष्ट्रभाषा के रूप में व्यवहृत थी, जिस का क्षेत्र कविता तक ही सीमित था। जो क्षेत्र व्रजभाषा ने तैयार कर दिया था; उस पर तुरन्त उसकी बहन (खड़ी बोली) ने अधिकार कर लिया; कोई कठिनाई न आयी।

परन्तु साहित्यिक व्रजभाषा में और व्रज की बोली में बड़ा अन्तर है। इसमें सन्देह नहीं कि व्रज की बोली ने ही परिष्कृत होकर व्रजभाषा का रूप धारण कर लिया है परन्तु अब इन में आकाश-पाताल का अन्तर है। व्रज की बोली में जो कहीं-कहीं कर्कशता है, वह व्रजभाषा में नहीं है। ग्राम्यता भी निकाल दी गयी है। जो लोग कहते हैं कि व्रजभाषा का स्वरूप समझने के लिए व्रज में कुछ दिन रहना चाहिए, वे वस्तुस्थिति समझते नहीं हैं। व्रज-वासियों की बोली साहित्यिक व्रजभाषा के लिए टकसाल नहीं है। साहित्यिक व्रजभाषा का अध्ययन करने के लिए तो व्रजभाषा का साहित्य ही देखना होगा। यदि किसी प्रयोग में साहित्यिक व्रजभाषा और व्रज की बोली में पार्थक्य है तो, ऐसी दशा में साहित्यिक व्रजभाषा ही प्रमाण मानी जायगी, व्रज की बोली नहीं। व्रज में प्रचलित 'धौताएँ' आदि संज्ञाएँ तथा 'बगदना' आदि क्रियाएँ तो व्रजभाषा ने छुी ही नहीं हैं। बहुत-से शब्द अन्य प्रान्तों के व्रज-भाषा ने लिए हैं, प्रत्यय भी अन्यत्र से अनेक लिये हैं। बहुत से व्रज के शब्दों को छील-छाल कर सुडौल बना लिया गया है। इन सब कारणों से दोनों भिन्न वस्तुएँ बन गयी हैं। दूध से निकल कर मक्खन रूप-रँग तथा स्वाद में भिन्नता रखता है। कुछ उदाहरण लीजिए।

ह का लोप

व्रज की बोली में 'ह' का लोप बहुतायत से देखा जाता है, क्रियाओं में, विभक्तियों में, प्रत्ययों में तथा सर्वनामों में भी। व्रजभाषा में यह (ह कालोप) क्वाचित्क है; सो भी अव्यय विभक्ति आदि में ही। व्रज की बोली में :—

"एक राजा ओ। बाकैं कोई सन्तान नाईं। एक दिना सबेरै ईं एक भंगिन झारिबे कूँ आई। जैसे ईं बानैं राजा कौ म्हौं देखौ, चट्ट ही थूकि दओ। राजा नैं जि बात देखि लई, और भंगिन कौ बुलबाइ कैं पूछी—"चौं री, तू जितौ बताइ कि तै नै मेरो म्हौं देखि कैं थूकौ क्यौं।"

व्रज साहित्य मण्डल (मथुरा) की मासिक मुखपत्रिका व्रजभारती में एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी छपी थी; ब्रज की ठेठ बोली में। उसी का प्रारम्भिक अंश ऊपर उद्धृत है। इस से ब्रज की बोली और साहित्यिक ब्रजभाषा का भेद स्पष्ट समझ सकते हैं।

'एक राजा ओ' यहाँ 'ओ' क्रिया है, जहाँ 'ह' का लोप हुआ है। साहित्यिक ब्रजभाषा में यह लोप न होगा! 'एक राजा हो रहेगा'; प्रत्युत 'हो' के बदले 'रह्यो' अधिक आता है। 'ओ' तो कभी आयेगा ही नहीं। 'सन्तान नाईं' में 'नाहीं' है। ह का लोप, ऊपर से अनुस्वार मिलकर—'नाईं'। 'सबेरें ईं', में 'ही' का 'ईं' रह गया है। 'ह' का लोप और ऊपर से अनुस्वार। ब्रजभाषा में भी 'ही' के ह् का क्वाचित्क लोप होता है; जैसे—'धरोई रहैगो' ह् का लोप और पूर्व वर्ण से मिल जाना स्पष्ट है; पर सानुनासिकत्व नहीं है। 'झारिवे कूँ' में 'ब' को 'व' है और आगे 'कूँ'। ब्रज भाषा में ऐसी जगहा सर्वत्र 'ब' रहेगा और 'कूँ' तो कहीं मिलेगा ही नहीं। जैसे 'ईं' में भी ह् क लोप तथा सानुनासिकत्व है। 'बाने' में 'व' का 'ब' होगया है। ब्रजभाषा में ऐसी जगह सर्वत्र 'वा' रहेगा 'वाने वाको' आदि। 'म्हौं' भी ब्रजभाषा में कभी न आयेगा। मुख, आनन आदि शब्द यहाँ प्रयुक्त होते हैं। और यदि आयेगा भी तो 'मुहँ' आयेगा; 'म्हौं का भयानक रूप यहाँ न मिलेगा। 'म्हौं में 'मुहँ' के 'ह्' ने स्थान बदल कर तमाशा किया है। अपने स्थान से उठ कर 'म्' के साथ आ बैठा और अ तथा उ मिल कर 'औ'। इस तरह 'म्हौं' की निरुक्ति है। यह रूप ब्रजभाषा को ग्राह्य नहीं। 'देखौ' क्रिया ब्रजभाषा में (भूतकाल में) न आयेगी। 'देख्यो न आँखिन कान सुन्यो नहिं' ऐसे प्रयोग होते हैं। 'देखौ' का प्रयोग तो (ब्रजभाषा में) आज्ञा-प्रार्थना आदि के लिए मध्यम पुरुष में होगा—'देखौ सही अपनी करनी, 'चट्ट' भी ब्रजभाषा में न आयेगा। हाँ 'चट्ट दै तोरि दई लकरी में, 'चट्ट' शब्दानुकृति के रूप में अवश्य रहेगा। 'थूनि दओ' में 'दओ' जैसी क्रियाएँ साहित्यिक ब्रजभाषा में हर्गिज नहीं आ सकतीं, आज तक आई नहीं। 'ऐसो दियो माखन, की तरह 'दियो' प्रयोग होगा। 'जि बात' में 'जि' का जो रूप है, वह साहित्यिक ब्रजभाषा में न मिलेगा। 'यह' रहेगा। 'चौं' भी ब्रजभाषा में प्रयुक्त नहीं होता। 'क्यों' चलता है।

इस तरह ब्रज की बोली में और साहित्यिक ब्रजभाषा में बहुत अन्तर है। ब्रज में एक शब्द प्रचलित है—'दारी'। औरतें (औरतों को) गाली देते समय इस शब्द का प्रयोग करती हैं। परन्तु ब्रज में जाकर आप किसी भी ग्रामीण से या मथुरा-वृन्दावन के नागरिक से इस शब्द का अर्थ पूछें,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो वह न बतला सकेगा। यही कहेगा कि यह एक गाली है। इसका मतलब यह कि इस शब्द का अर्थ लोग भूल गये। भूल इसलिए गये कि उस अर्थ में दूसरे शब्द अधिकता से प्रयुक्त होने लगे। औरतें भी 'दारी' का अर्थ न बतला सकेंगी। परन्तु साहित्य में एक जगह यह शब्द आया है। मुझे वहाँ से इसके अर्थ का पता लगा। एक दिन वृन्दावन में मैं श्री हरिदास स्वामी के मधुर पद्य पढ़ रहा था। भगवान् की अनन्य उपासना पर जोर दिया गया है, उन पद्यों में और (भगवान् के अतिरिक्त) अन्य देवताओं की उपासना को ठीक नहीं बतलाया गया है। जो भगवान् के साथ-साथ दूसरे देवताओं की भी उपासना करता है, उसकी निन्दा करते हुए उपमा में कहा गया है— 'ज्यों दारन में 'दारी' प्रकरण से तथा 'दारन' के साहचर्य से मालूम हुआ कि व्रज में 'वेश्या' को 'दारी' कहा करते थे। अब यह अर्थ लोग भूल गये। इसी तरह कोई-कोई शब्द ही व्रज की बोली से अब उठ गये हैं, जो साहित्य में हैं।

इस प्रकार शब्द-स्वरूप में तथा प्रयोग में बड़ा अन्तर है। व्रज की बोली में और साहित्यिक व्रजभाषा में जो अन्तर है, उसे समझे बिना लोग कुछ का कुछ कह लिख जाते हैं। व्रजभाषा का व्याकरण लिखते समय व्रज की बोली को आदर्श न माना जायगा। हिन्दी व्याकरण लिखते समय 'गुरु' जी मेरठी बोली को ध्यान में रखते, तो 'एक मेरी धोती थी' और 'एक छोटी सी पोथो थी' की जगह 'एक मेरी धोत्ती ही' और 'एक छोटी सी पोत्थी ही' ऐसा लिखकर इसी का व्याकरण उन्हें बनाना पड़ता। तब इसे मानता कौन ? तब तो वह राष्ट्रभाषा हिन्दी का व्याकरण न रह कर मेरठी बोली का हो जाता ! 'एक राजा हा' ऐसा मेरठी में प्रयोग होता है; पर उससे निर्गत राष्ट्रभाषा में— 'एक राजा था'।

सारांश यह कि किसी प्रादेशिक बोली को जब साहित्यिक रूप मिल जाता है, तो उसके स्वरूप में भेद हो जाता है। फिर, साहित्यिक भाषा का परिष्कार करते समय या उसका व्याकरण बनाते समय उस प्रादेशिक बोली को कभी भी मुख्य आधार या प्रमाण न स्वीकार किया जायगा। साहित्य के परमाचार्यों ने जो शब्द जिस रूप में अधिकता से प्रयुक्त किया है और जो प्रयोग बराबर चालू है, वही ग्राह्य होगा। उसी के अनुसार व्याकरण बनेगा। हाँ, यह दूसरी बात है कि कोई व्रज की या मेरठ की बोलियों का ही व्याकरण अलग बनाये। ऐसा होना भी चाहिए। परन्तु व्रज की बोली का व्याकरण कभी भी व्रजभाषा का व्याकरण न कहला सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसाइयों की हिन्दी सेवा

[श्री प्रभात मिश्र शास्त्री, साहित्यरत्न]

संसार की यह स्वाभाविक नीति है कि यदि किसी जाति को किसी देश पर शासनाधिकार प्राप्त हो जाता है तो उस देश में अपने धर्म प्रचार की भी अभिलाषा प्रबल रूप से उसके हृदय में उत्पन्न होती है ।यही कारण है कि जब अंग्रेजों को भारतवर्ष में शासनाधिकार प्राप्त हुआ तो उसके बाद ये लोग भी अपने धर्म-प्रचार में संलग्न हो गये। इस समय हिन्दी गद्य की कोई रूप रेखा न थी। पद्य की हिन्दी में तूती बोल रही थी। पद्य में प्रणीत पुस्तकों के सहारे साधारण जनता में धर्म प्रचार करना सर्वथा असम्भाव्य था। यह सोच कर इन लोगों ने हिन्दी के तत्कालीन विद्वानों को गद्य में पुस्तक लिखने के लिये प्रोत्साहित किया।

सब से प्रथम 'फोर्टविलियम कालेज' के प्रधान अध्यक्ष जान गिल क्राइस्ट महोदय ने आगरे से लल्लूलाल जी को तथा विहार से सदल मिश्र को कलकत्ता बुलाया। और इन दोनों को अपने कालेज में स्थान दिया।

इन लोगों ने कालेज के आश्रय में रह कर 'प्रेमसागर' तथा 'नासिकेतोपाख्यान' सरीखे सुप्रसिद्ध ग्रन्थों की हिन्दी गद्य में रचना की। इस प्रकार १८६० के आस पास हिन्दी गद्य में लिखी हुई, जो दो-चार पुस्तकें प्राप्त होती हैं, उनका सब से अधिक श्रेय ईसाइयों को है।

धीरे-धीरे ईसाई पादरियों की संख्या हिन्दुस्थान में बढ़ने लगी। 'सिरामपुर' उस समय पादरियों का प्रधान केन्द्र हो रहा था। विलियम केरे आदि पादरियों के प्रयत्न से 'बाइबिल' का भी गद्य में अनुवाद हुआ। कुछ लोगों का मत है कि केरे साहब ने स्वयं उसका अनुवाद किया था।

ईसाइयों ने यही नहीं, उस समय लल्लूलाल जी तथा सदासुखलाल जी की चलाई हुई भाषा को भी आदर्श माना, और अपने धार्मिक पैम्फलेट और पुस्तकों में भी वे उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया करते थे। १८९२ में सिरामपुर के प्रेस से प्रकाशित 'दाऊद के गीत' नामक पुस्तक की भाषा शुद्ध हिन्दी है। इसमें अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग बहुत कम है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ईसाइयों ने हिन्दी को स्वतन्त्र भाषा माना तथा तत्कालीन शिक्षितों में मजाक उड़ाई जाने वाली संस्कृताऊभाषा को सम्मान की दृष्टि से देखा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय इन लोगों ने कई स्कूल भी खोले थे। धीरे-धीरे इनके स्कूलों की संख्या बढ़ती गई। इससे स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों की मांग अधिक होने लगी। इसकी पूर्ति के लिये इन लोगों ने १८४० के लगभग आगरा में 'स्कूल-बुक् सोसायटी' नाम की पुस्तक-प्रकाशन की एक संस्था भी खोली। जिससे १८४६ में मार्शमैन की लिखित 'प्राचीन इतिहास' नामक पुस्तक रतनलाल द्वारा अनुवाद करा कर कथासार के नाम से प्रकाशित हुई। फिर उसके बाद सोसायटी ने १८४७ में ओंकार भट्ट लिखित भूगोलसार नाम की पुस्तक भी प्रकाशित की। कुछ वर्षों के बाद इसी सोसायटी से बद्रीलाल शर्मा की लिखी हुई रसायन प्रकाश नाम की पुस्तक भी प्रकाशित हुई। कलकत्ता में भी एक इस प्रकार की सोसायटी थी, उसने भी पदार्थसार आदि हिन्दी की कई पुस्तकें प्रकाशित कीं।

मिर्जापुर के 'आरफन प्रेस, से शेरिंग साहब के संपादकत्व में कई हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित हुईं। जिनमें से 'भूचरित्र दर्पण' 'भूगोल विद्या' 'जंतु प्रबन्ध' और 'विद्यासार' आदि पुस्तकें भाषा की दृष्टि से अत्यधिक उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त पुस्तकें १८१२ से लेकर १८१८ के अन्दर की हैं। कई ईसाई कवि भी होगये हैं, जिनमें आसी और जान का नाम विशेष स्मरणीय है। इनके बनाये हुए भजन उस समय के भारतीय ईसाई समाज में बड़े प्रेम से गाये जाते थे। आज भी भारतीय ईसाइयों के घर में हिन्दी का काफी प्रचार है।

हिन्दी की नाट्य कला के विकास में जिस प्रकार भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र तथा भाषा के परिष्कार में आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी का अग्रिम स्थान है, उसी प्रकार हिन्दी भाषा के प्रारम्भिक गद्य के विकास में ईसाइयों का भी हाथ रहा है। हिन्दी साहित्य इनकी गद्य सेवा के लिये चिरऋणी रहेगा।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंगलाप्रसाद पारितोषिक निर्णायकों के मत

१

[संवत् २००१ का मंगलाप्रसाद पारितोषिक श्री महादेवी जी वर्मा को उनकी रचनाओं पर दिया गया है। प्रतियोगिता में कुल ११ पुस्तकें आईं थीं। वे जिन निर्णायकों के पास भेजी गईं थीं उनके मत हिन्दी पाठकों की जानकारी के लिए नीचे दिये जा रहे हैं—सं०]

इस वर्ष मंगलाप्रसाद पारितोषिक के लिये काव्य (काव्य-गद्य-पद्य), नाटक, उपन्यास और कहानियों की जो पुस्तकें प्राप्त हुई हैं वे निम्नलिखित हैः—

१	परतंत्र	काव्य	ले० श्री रघुवीरशरण मिश्र
२	सुघर गँवारिन	उपन्यास	ले० श्री रामजीलाल वैद्य
३	वीर विक्रमादित्य	काव्य	ले० श्री शिवाधार पाण्डेय
४	रश्मि	,,	ले० श्रीमती महादेवी जी वर्मा
५	नीरजा	,,	,,
६	आधुनिक कवि	,,	,,
७	हिमकिरिटिनी	,,	ले० श्री माखनलाल चतुर्वेदी
८	पल्लविनी	,,	ले० श्री सुमित्रानंदन पंत
९	आधुनिक कवि	,,	,,
१०	परिमल	,,	ले० श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
११	अनामिका		

इनमें नं० ३ तक के लेखकों की पुस्तकों के सम्बन्ध में मेरा विचार है कि इन पुस्तकों को यदि पारितोषिक समिति निर्णायकों के पास न भेजती तो कदाचित् इनकी मानरक्षा हो जाती, क्योंकि अन्य लेखकों एवं उनकी रचनाओं के सामने पानी पर तैरते पत्रों के समान ये दिखाई देती हैं। जिनमें न गंभीरता न लेखक के वैशिष्ट्य की छाप। उपर्युक्त पुस्तकें केवल लिखने के लिये लिखी गई हैं। लिखने का विशेष उद्देश्य होते हुए भी उनपर मौलिकता का कोई प्रभाव नहीं है।

१—'परतंत्र' एक साधारण-सा काव्य है। जिसमें भाषा की रवानी के अतिरिक्त कोई चमत्कार नहीं हैं, केवल परतंत्रता से मुक्ति के लिये शब्दों की गंभीरता से हीन छटपटाहट है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—'सुवर संवारिन' बहुत घटिया दर्जे का उपन्यास है। जो कदाचित् आज औपन्यासिक 'टेकनीक' के अनुसार उपन्यास भी नहीं है। कथानक, भाषा, संवाद सब शिथिल और चमत्कारहीन हैं।

३—'वीर विक्रमादित्य' यह काव्य नामकरण की दृष्टि से चमत्कार पूर्ण है पर काव्यत्व को छू भी नहीं गया है। इसके छंद पुराने, वर्णन शैली पुरानी और निर्वाह भी साधारण है।

इन तीनों पुस्तकों को मैं मंगलाप्रसाद पारितोषिक के अयोग्य समझता हूँ। इसके पश्चात् मैं हिन्दी साहित्य के चार प्रसिद्ध कवि महारथियों को लेता हूँ। विषय में उतरने के पूर्व इतना कह देना उपयुक्त होगा कि ये चारों महाकवि हिन्दी साहित्य में अपनी-अपनी विशेष शैली के प्रवर्तक हैं। अच्छा होता कि कि इन चारों कवियों को प्रति वर्ष काव्य के पुरस्कार के समय एक-एक करके पुरस्कृत किया जाता। किन्तु सम्मेलन ने इन चारों को इकट्ठा करके निर्णायकों की स्थिति में विषमता उत्पन्न कर दी है। ऐसी दशा में मेरा निर्णय निम्न प्रकार है:—

(मैं इन चारों को इनके काव्य से भिन्न अस्तित्व वाला नहीं मानता। मैं मानता हूँ ये कवि स्वयं काव्य हैं इसलिये उनकी पुस्तकों के नाम न लेकर उनकी ही परस्पर तुलना करूँगा।)

१ महादेवी वर्मा स्वर्गीय गीतों की श्रेष्ठतम गायिका हैं। इनका विरह और मिलन, आह्वान, प्रत्याख्यान, औत्सुक्य और निराशा तथा वेदना लोकोत्तर होने के साथ पवित्रभावना-प्रसूत हैं। उसमें कहीं भी कालुष्यवासना-सिक्त प्रेम और दुर्गन्धि-युक्त अनुरक्ति नहीं है। प्रकृति के प्रत्येक कोमल प्रान्त से छवि, सौन्दर्य, अमृत लाकर वे अपने आराध्य को सजाती हैं। प्रिय के अमूर्त होते हुए भी जिन गीतों के चित्रपट पर उसकी माधुर्य मूर्ति अंकित होती है वह एक है, और है सीमिति। उसके नख-शिख सौन्दर्य में विराटता होते हुए भी वह चित्रकार की कूचिंका में एक ही प्रकार की आकृति भरती हैं। विविध शब्दों में प्रकृति के विविध चित्रों द्वारा उस एक का ही रूप बनता है। स्पष्ट शब्दों में यह कहा जा सकता है कि महादेवी की काव्य साधना अन्य तीन कवियों के सामने सीमित तथा कुछ शब्दराशि से, कुछ प्रकृति के व्यापार से शृंगारित है। वे मंदिर की मूर्ति के उस चित्रकार की तरह हैं जो केवल मूर्ति को सजाने उसको सुन्दरतर से सुन्दरतम बनाने में प्राणों की आहुति दे डालता है। उनका काव्य-चित्रपट अत्यंत सुन्दर अत्यंत मधुर होते हुए भी बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटा है। उसमें काव्यगत वैविध्य नहीं है। शैली में नवीनता होते हुए भी उसमें एक ही गति की ओर विकास है, बहुरूपिणी वह नहीं हैं। भाषा की दृष्टि से भी वे सीमित शब्दों की स्वामिनी हैं, दीपक, आकाश, वर्षा, मेघ, विद्युत्, इन्द्रधनुष, रात्रि, दिन, ऊषा, सन्ध्या, शेफाली, रजनीगंधा आदि। काव्य जो व्यक्ति, समाज, देश, राष्ट्र, आत्मा, परमात्मा प्रकृति का प्रतिनिधित्व करता है, महादेवी में इनमें से बहुत-सी बातों का अभाव है।

इसके अतिरिक्त उपनिषदों का ब्रह्म उनमें छाया-मूर्ति-सी बन कर आता है, इसलिये दर्शन तथा वेदान्त की सत्ता से युक्त उनमें सोपाधिक ब्रह्म की छाया है। वास्तविक सच्चिदानंद ब्रह्म नहीं है। प्रकृति तथा जीवन के अन्तराल में आकांक्षाओं की स्वीकृति एवं आत्मनिरति नाना रूपों में कवि के हृदय में प्रकट होती है, जिनमें कल्पित प्रियतम के पाने की उत्कटता है। उसी उत्कटता में वह भिन्न-भिन्न प्राकृतिक सत्यों द्वारा उसे पाने का प्रयास करता है। कवि के सम्पूर्ण जीवन का काव्य अपनी अभाव पीड़ित सत्ता से उसके खोजने का एक प्रयास है। इसलिये वह शुद्ध दर्शन नहीं है। और इसीलिये उसमें जीवन का शाश्वत सत्य भी कम झलक पाया है।

(२) हिमकिरीटनी का कवि हिन्दी साहित्य के राष्ट्रीय जागरण का ऊषः-कालीन कवि है। इसमें प्रातःकाल का शाश्वत सौन्दर्य है, जो दिनभर के लिये जीवन में ताज़गी भरता रहता है। कला उसकी प्रत्येक शब्द-योजना पर, प्रत्येक भाव-सौन्दर्य पर बलात् आकर नृत्य करने लगती है। उसकी प्रत्येक शब्द-झंकृति में नई स्वर साधना है, नयापन है। प्रत्येक शब्द का एक मरोड़ है, जो अन्य शब्दों के साथ मिलकर अभिनव-ध्वनि उत्पन्न करता है। वह व्यंजना का कवि है। वक्रोक्ति और व्यंग्य में निराला को छोड़कर कोई कवि हिमकिरीटिनी के कवि की समता नहीं कर सकता। उसकी कविता में बाण की नोक-सा तीखापन है। जो अपनी चुभन के साथ वारुणी की सी मस्ती भी भर देता है। चतुर्वेदीजी की कविता एक 'इंजक्शन' की सुई की तरह है, जो चुभती तो है ही; किन्तु एक स्फूर्ति भी देती है। राष्ट्रीयता से भिन्न उनकी कविता की अभि-व्यक्ति नहीं है। महादेवी जी की तरह उनका भी एक ही लक्ष्य है राष्ट्र। झरने में, कोयल के कूकने में, कुंज कुटीरे यमुना तीरे में, कलिका की ओर से; कोई कविता लीजिये, उनकी आराधना का अन्तिम विन्दु एक है राष्ट्र। उनकी संपूर्ण साधना कला के द्वारा राष्ट्रीय जागरण में समाप्त होती है। जहाँ यह गुण है, वहाँ यही एक दोष भी है। वह है उसकी असार्वदिकता तथा एकां-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिता। इस दृष्टि से महादेवी की कविता में जितना स्थायित्व है, वह इसमें नहीं है। राष्ट्रीय जागरण के बाद उसका क्या महत्त्व रहेगा यही देखने की बात है। महादेवी की कविता की तरह इनमें (कविता में) भी बार-बार एक ही बात को भिन्न-भिन्न रूपों में दुहराया गया है। कहीं-कहीं शब्दों की बाजीगरी वा दोष हिमकिरीटिनी में अधिक झलक उठा है। इसके साथ ही हिमकिरीटिनी के कवि का क्षेत्र बहुत अधिक व्यापक नहीं हो पाया है।

(३) सुमित्रानंदन पंत की कविताओं में उक्त दोनों कवियों के दोषों का अभाव है। पंतजी प्रकृति और जीवन की कोमलतम विविध भावनाओं के व्रष्टा हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति और पुरुष ने स्पष्ट होकर लास्य किया है। शब्दों के साथ भाव लहराते चलते हैं। उनकी प्रत्येक कविता-पंक्ति पाठक को तन्मयता के रस से नहलाती चलती है। वे जो कुछ कहते हैं, उसमें निःसीम स्वाभाविकता तथा शब्दचित्र मूर्त होकर भावचित्रों का निर्माण करते चलते हैं। बादल, बिजली, तारे, चंद्रमा, रात्रि, प्रातः, ऊषा, संध्या, झरने, नदी, भूधर, वृक्ष, पुष्प, कली आदि के गंभीरतम चित्रण के साथ जीवन के विभिन्न अंगों पर विशद वर्णन और रूप निर्माण में वे अपना सानी नहीं रखते। पंत जी का कवि प्रधान रूप से कलाकार है। इनके काव्य में कला विचार और भावों का सम्मिश्रण इतना ओत-प्रोत होता है कि किसी एक वस्तु को दूसरी से भिन्न करके नहीं दिखाया जा सकता। काव्य, चित्र, संगीत तीनों की प्राणवाहिनी त्रिवेणी इनकी कविताओं में बिम्बित प्रतिबिम्बित होती हुई चलती है। वे मननशील कवि हैं। जीवन के प्रत्येक रूप को, प्रकृति की प्रत्येक छवि को उन्होंने आत्म-विभोर एवं तन्मय होकर देखा है। इसीलिये जिस दिशा में, जिधर उनकी लेखनी चली है, उधर ही अपने में पूर्ण हो उठी है।

भावों का इतना मूर्त चित्र हिन्दी के किसी कवि में नहीं है। शब्दों का राग चित्रमय थिरकन और चुस्ती तो कदाचित् इनकी अपनी एक विशेषता ही है। पंत जी ने हिन्दी को नई भाषा, नई शैली, नई योजना, नई अर्थाभि-व्यक्ति और काव्य को नया प्राण दिया है। परन्तु कोमलता के अतिरिक्त पौरुष का उनमें अभाव है। शृंगार, करुणा, वात्सल्य रस के ये स्रष्टा हैं। जीवन की उत्तम अनुभूति पद-पद पर लक्षित होती है। जगत् के भावात्मक और बौद्धिक चित्रों में वे सर्वप्रथम मानवतावादी कवि हैं। उनका काव्य भारतीय चित्रपट का रूप निर्माण करता हुआ भी देश-काल के बंधनों से परे है। वे प्रकृति और जीवन के शाश्वत कवि हैं। इतना होते हुए भी उनमें पुरुष निर्बल है। ओज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटिया दर्जे का है। अपितु कहना चाहिये कि है ही नहीं। जीवन और प्रकृति के इस पहलू के वे कवि नहीं हैं। यह उनका स्वभाव है, जो उन्हें इन गुणों की तरफ नहीं खींच सका।

(४) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—इन सबसे ऊपर प्रकृति और जीवन के धनी कवि हैं। प्रत्यक्ष, परोक्ष सब कुछ इस कवि की दृष्टि में स्पष्ट होकर आता है। कविता की शब्दराशि तो ऐसे निकलती है, जैसे मशीनगन से गोलियाँ। सरल से सरलतम, कोमल से कोमलतम और कठोर से कठोरतम शब्दों के वे स्वामी हैं। इसी प्रकार शैली भी प्रतिपद नवीन भाव गाम्भीर्यपूर्ण है। निराला जैसे स्वयं पौरुष पुंज हैं; किन्तु उस पौरुष के भीतर जो हिम-सा शीतल, शान्त, धवल, अमल हृदय स्पन्दन करता है, ठीक इसी तरह उनकी कविताओं में सभी रस, सभी दर्शन, नवीन और प्राचीन उभरते-उफनते चलते हैं। इस कवि को समझने के लिये अध्ययन और प्रतिभा की आवश्यकता है। हिन्दी साहित्य में जिन लोगों ने क्रान्ति दर्शन किया है, उनमें निराला का स्थान सर्वप्रथम है। भाषा, भाव, छन्द, शब्दयोजना, अर्थाभिव्यक्ति, श्लेष, व्यंग्य सभी में निराला ने क्रान्ति की है। इस क्रान्ति की अग्रगामिता में कभी-कभी वे अपनी बात ठीक तरह से नहीं कह पाते और दुरूह होकर रह जाते हैं; पर मैं मानता हूँ यह दोष होते हुए भी कवि का गुण है। अर्थ और भावगांभीर्य में कोई कवि इनकी समता नहीं कर सकता। जहाँ अन्य कवि आकर थक गये हैं, वहाँ से निराला का प्रारम्भ है। अजस्र स्रोत की तरह अपने जीवन को आदिकाल से यह कवि क्रान्तिदर्शी रहा है। इसने कभी किसी की अनुकृति नहीं की। जब कि प्रायः सभी कवियों का प्रारम्भ एक दूसरे से प्रभावित होकर प्रस्फुटित हुआ है। मैं यह नहीं कहता कि निराला पर किसी का प्रभाव नहीं पड़ा। बंगाल के वैष्णव साधुओं तथा रवीन्द्रनाथ का इनकी कविताओं पर स्पष्ट प्रभाव है फिर भी उनकी छायानुवृति में अपनी मौलिकता को इस कवि ने कहीं भी नहीं छोड़ा है। 'कवयः क्रान्तदर्शिनः' का संपूर्ण रूप निराला में है। हाँ, इन सब के साथ उनके काव्य में काठिन्य, कर्कशता, दुरूहता जैसे दोषों का अभाव भी कम नहीं है। परन्तु वे दोष जनसाधारण पाठक के लिये हैं, पंडित और काव्य-रसिक के लिये नहीं। इसके अतिरिक्त कवि का दृष्टि पट इतना विशाल है कि जीवन और प्रकृति की शायद ही कोई तस्वीर इनकी नजरों से बची हो। व्यक्ति, समाज, देश, देशान्तर, द्वीप, द्वीपान्तर, वर्तमान, भूत, भविष्य, आकाश, पाताल सभी के सम्बन्ध में इस कवि ने अजस्र रस वर्षा की है। और बराबर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखण्ड निर्झर की तरह निराला की कविता-सरस्वती फूटती जा रही है। मालूम होता है कवि का हृदय एक लावा है जहाँ से निरंतर स्फुलिंग उठ रहे हैं। मेरा विश्वास है हिन्दी के पाठक को निराला का अध्ययन करने के लिये समय और धैर्य की आवश्यकता है।

इस उत्तरोत्तर क्रमिक विकास को देखते हुए, मैं निर्णय देता हूँ कि 'निराला' को मंगलाप्रसाद पारितोषिक दिया जाय।

इसके साथ ही मैं यह भी कहता हूँ कि इन चारों कवियों का इतना महत्त्व है कि उनको पुरस्कृत करने से उनका नहीं, अपितु सम्मेलन का गौरव बढ़ेगा। सम्मेलन से मेरा अनुरोध है कि पुरस्कृत करते समय उस वर्ष के निर्णायकों की सम्मतियों को पुस्तिका के रूप में प्रकाशित करे। ताकि निर्णायकों के विचारों एवं निष्कर्ष पर हिन्दी-संसार एवं आलोचक अपना मत दे सकें। जैसे सम्मेलन ने हिन्दी के इन सर्वोच्च कवियों की कविताओं को स्वयं चुनकर भेजा है, इसी तरह उपन्यास, नाटकों, कहानियों को भी चुनना चाहिये था। जो गद्य की पुस्तकें इस वर्ष पुरस्कार में आई हैं उनको देखकर ज्ञात होता है और कोई भी निर्णायक या बाहरी व्यक्ति देखकर कह सकता है कि हिन्दी का गद्य-साहित्य -उपन्यास, कहानी, नाटक, बहुत ही हीन है।

मेरी सम्मति है साहित्य में इन तीनों को काव्य से पृथक् करके एक-एक के ऊपर निर्णयार्थ पुस्तकें लेनी चाहिये। सब को मिलाकर निर्णय देने में न तो ठीक प्रकार से विचार ही हो सकता है न यह उचित ही दिखाई देता है। फलतः] मेरे निर्णय का क्रम इस प्रकार है :—

१ श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	(निन्यानवे)	९९—१००	
२ श्री सुमित्रानंदन पंत,	(पचासी)	८५	"
३ श्री माखनलाल चतुर्वेदी	(पचहत्तर)	७५	"
४ श्रीमती महादेवी वर्मा	"		"
५ श्री शिवाधार पाण्डेय	(पन्द्रह)	१५	"
६ श्री रघुवीरशरण मित्र	(दस)	१०	"
७ श्री रामजीलाल वैद्य	(पाँच)	५	"

२६ जनवरी, १९४६, उदयशङ्कर भट्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

२००१ सं०

महादेवी जी की कविता में भावों की गंभीरता के साथ ही कल्पना की उत्कृष्ट उड़ान है। जटिल भावों को बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया गया है जिससे भाषा में जटिलता नहीं आने पाती और भाषा तथा भावों में मैत्री प्रतीत होती है। उनकी पीड़ा नित्य प्रतीत होती है। काव्य में व्यथा की आर्द्रता है। करुण भावों से ओतप्रोत होने कारण इनके गीत मधुर बन पड़े हैं और इनकी नीरजा तो गीत काव्य की पूर्णता है। महादेवी जी का काव्य सूक्ष्म आनंद के वातावरण में विचरण में करने का अवकाश देता है। अतएव हिन्दी के कलाकारों में इनका प्रमुख स्थान है। मेरी सम्मति में इनकी रचनाओं का प्रथम स्थान है।

निराला जी की भाव व्यंजना अत्यंत गंभीर और मार्मिक है। मधुर लय तथा ध्वनि का विशेष ध्यान रखते हैं। छंदों के प्रयोग में स्वतंत्रता से काम लिया है। हिन्दी में मुक्तकवृत्त के प्रवर्तक हैं। अगोचर को गोचर और अमूर्त में मूर्त की प्रतिष्ठा बड़ी कुशलता से करते हैं। शब्दावली गीतिमय है। सर्वतोमुखी प्रतिभा से सम्पन्न होने पर भी मैं महादेवी का स्थान इनसे बढ़ कर मानता हूँ। इनकी रचनाओं का दूसरा स्थान है।

पंत जी की रचनाओं में खड़ी बोली का बड़ा मधुर प्रयोग है। कल्पनाओं में नवीनता तथा सार्थकता है। अनुभूति और उर्वर कल्पना का सुंदर सम्मिश्रण है। भाव प्रकाशन की शैली मौलिक है। प्रकृतिक दृश्यों को नवीन ढंग से व्यक्त किया है। आधुनिक कवियों में इनका स्थान महादेवी और निराला के अनंतर है। मेरी सम्मति में इनकी रचनाओं का तृतीय स्थान है।

अयोध्यानाथ शर्मा

३

श्री मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक के सम्बन्ध में मैं अपनी सम्मति भेजता हूँ। मेरी राय में पारितोषिक का क्रम निम्न प्रकार रहना चाहिये—

प्रथम—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
द्वितीय—श्रीमती महादेवी वर्मा
तृतीय—श्री सुमित्रानन्दन पन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन कवियों की कविताओं के सम्बन्ध में मैं कुछ आलोचनात्मक पंक्तियाँ भी सेवा में इसी पत्र के साथ भेज रहा हूँ।

हरिशङ्कर शर्मा

१. प्रथम—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

पुस्तकें—परिमल, अनामिका।

प्रस्तुत काव्य-कृतियों से निराला जी के उत्कृष्ट कवित्व तथा उनकी पौरुष प्रतिभा का पूर्ण परिचय मिलता है। कविताओं में उदात्त गम्भीरता और शालीनता सर्वत्र व्याप्त है। कवि के कथन में ओज है, अनुभूति है और है जीवन-दर्शन की व्यापक दृष्टि। भाव, भाषा और छन्द की दृष्टि से भी सभी कविताएँ खरी उतरती हैं। संस्कृत-गर्भित शब्दों का काव्योचित प्रयोग तथा नवीन अप्रचलित छन्दों का समुचित निर्वाह कवि की निजी विशेषता है। अधिकांश कविताएँ सरस संगीत सुधा से सिक्त हैं।

शृंगार के अतिरिक्त अध्यात्म, देश-प्रेम, समाज सुधार तथा भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रति भी कवि की सजग सहानुभूति रही है, 'तुम और मैं' 'जागो फिर एक बार', 'शिवाजी का पत्र', 'राम की शक्ति पूजा' 'वह तोड़ती पत्थर', 'दिल्ली', 'प्रेयसी' आदि कविताएँ प्रत्येक दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर और सराहनीय हैं।

२. द्वितीय—श्रीमती महादेवी वर्मा

पुस्तकें—रश्मि, नीरजा, आधुनिक कवि

बौद्ध दर्शन के दुःखवाद की छाया श्रीमती महादेवी वर्मा कीअधिकांश कविताओं पर स्पष्ट दिखाई देती है। पीड़ा से आप्लावित काव्य-कृतियों में अवसाद का उन्माद है। वीणा के तारों की करुणमीड़ की-सी हृदय स्पर्शिनी झंकार कवयित्री जी के काव्य-कानन में मुखरित है। इनके गीतों में निर्जन वन प्रदेशों में बहती हुई एकाकिनी शैवालिनी का-सा मन्द-तरल प्रवाह है। वेदना की निश्चित पृष्ठभूमि होने के कारण प्रायः सभी रचनाओं में एक प्रकार की समरसता झलकती है। कल्पना की बारीकी कहीं-कहीं अस्पष्टता उपस्थित कर देती है। इनके रचे हुए पदों में गीतात्मकता अधिक है, विशेषतः नीरजा के गेय-पद सहज स्मरणीय तथा प्रवाहपूर्ण हैं।

३. तृतीय श्री सुमित्रानन्दन पन्त

पुस्तकें—पल्लविनी, आधुनिक कवि

पंतजी की कविता एक सरल स्निग्ध कोमलता से अनुप्राणित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्पना-सौन्दर्य का चमत्कार इनकी कविता में प्रचुर मात्रा में मिलता है। सरस कोमल शब्दों के चयन से कविता अत्यन्त सुकुमार हो गयी है। प्राकृतिक दृश्यों के चित्रांकन में, पंतजी ने विशेष सहृदयता और निपुणता का परिचय दिया हैं। चांदनी रात में नौका विहार का वर्णन पढ़कर आँखों के आगे एक सजीव चित्र-सा खड़ा हो जाता है। विद्यापति के समान मुग्धा के प्रति पंत जी की भावुकता अधिक सजग जान पड़ती है। देश और काल के प्रति भी रोमांटिक-भावना प्रधान होकर कवि उदासीन नहीं रह सका। उपेक्षित वर्ग की ओर भी कवि ने अपनी दृष्टि दौड़ाई है। Poetical concesson का अतिक्रमण कहीं कहीं खटकनेवाला लगता है।

४

अगस्त २, १९४६

सबसे पहले मैं सम्मेलन की मंगलाप्रसाद-पारितोषिक समिति (अथवा जो कुछ भी नाम उस समिति का हो) को हृदय से धन्यवाद देना चाहता हूँ। मुझे निर्णायक का पद देकर समिति ने मुझे गौरवान्वित किया। मुझे इसका बहुत दुःख है कि अब तक मैं अपना निर्णय न भेज सका। मैं इस विलम्ब के लिये समिति से क्षमा चाहता हूँ। कई महीनों से मैं अत्यधिक व्यस्त रहा हूँ और मई, जून और जुलाई में तो मैं बराबर देहातों में ही घूमता रहा; बाँदा रहने का अवकाश ही नहीं मिला। अब भी मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं प्रत्येक पुस्तक की विस्तृत आलोचना भेज सकूँ। यदि आवश्यक हो तो कृपया मुझे सूचित करें—मैं लिखकर भेज दूँगा। पर उसमें मुझे बहुत समय लगेगा। इस समय केवल अपना निर्णय और प्रतियोगिता में आई हुई पुस्तकों पर दो-चार शब्दों में अपनी सम्मति—इतना ही सेवा में प्रेषित कर सकूँगा।

१. परतन्त्र (राष्ट्रीय महाकाव्य, रचयिता श्री० रघुवीरशरण 'मित्र'। साधारण कोटि की रचना है जो कहीं कहीं कविता कही जाने योग्य हो जाती है, अन्यथा तुकबन्दी से ऊँची नहीं उठती। कहीं-कहीं तो तुकबन्दी भी अत्यन्त निम्नकोटि की ही हो पाई है। उदाहरणार्थ—

'लाखों की रसना के कन्नि पर,
तीखे तीर चला करते हैं;
न जाने कितने घावों पर
नश्तर रोज लगा करते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. वीर विक्रमादित्य (एक वीर काव्य) रचयिता श्री शिवाधार पाण्डेय। मैं पाण्डेय जी के इस काव्य को पढ़कर दुःखित हुआ। एक समय था जब पाण्डेय जी की लेखनी से सहज सुन्दर कविता की सृष्टि होती थी। प्रस्तुत काव्य कवित्व की दृष्टि से भी और भाषा और पद्य रचना की दृष्टि से भी साधारण कोटि के पद्य से अधिक ऊँचा नहीं उठ सकता है। कई स्थलों पर भाषा और पद्य रचना दोनों ही बहुत नीचे गिर गये हैं। उदाहरणार्थ—

"फरमाया राजुबल" ज़रा दम भर थम जाओ।
विश्वघोष आ जाय, चहे फिर जहाँ सिधाओ॥"

३. हिमकिरीटिनी-रचयिता 'एक भारतीय आत्मा'। चतुर्वेदी जी की कविता में शान्ति है, गम्भीरता है, माधुर्य है-काव्योचित कोमलता है। यह सब होते हुए भी उसमें कविता का एक गुण नहीं है और वह है संगीत। यहाँ संगीत शब्द को मैं उसके संकुचित अर्थ में नहीं ले रहा हूँ, मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि चतुर्वेदी जी की कविता गेय नहीं है। 'हिमकिरीटिनी' की अधिकांश कवितायें गीतों के रूप में लिखी गई हैं। कई गाई भी जा सकती हैं। संगीत से मेरा अभिप्राय है कविता की आत्मा का स्वयं संगीतमयी होना, जो हमें सूर और मीरा में—और आधुनिक युग में कुछ कवियों की रचना में देखने को मिलता है। दूसरी बात यह है कि चतुर्वेदी जी की रचना में कई जगह यह जान पड़ता है कि कवि को उपयुक्त शब्द की खोज करनी पड़ी है और मिल जाने पर भी वह शब्द अपने स्थान पर स्वयं नहीं जम गया है, उसे वहाँ बिठाना पड़ा है।

४. और ५. परिमल और अनामिका—रचयिता श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'। 'परिमल', हिन्दी के इस युग के कविता-संग्रहों में बेजोड़ है। निराला की कविता उसमें सर्वथा सुन्दर, आकर्षक रूप में अवतरित हुई है। उसमें कला है, सौन्दर्य है, संगीत है, ओज है, प्राण है। 'अनामिका' की रचनायें चाहे कुछ हों कविता नहीं कहीं जा सकतीं। उनमें पाण्डित्य है, नवीनता है, विलक्षण शब्द-चयन है, कहीं-कहीं गम्भीरता है, विचार-गौरव है। पर यही सब गुण-एकत्रित होकर भी पद्य को, अथवा (जो शब्द अनामिका' की रचनाओं के लिये इससे अधिक उपयुक्त है) वृत्तगन्धि-गद्य को कविता नहीं बना सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वह तोड़ती पत्थर—
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर,
वह तोड़ती पत्थर।'

न यह कविता है न इसकी भाषा ही सहज स्वाभाविक भाषा है। युक्तप्रान्त में साधारण बातचीत में रास्ते को कोई 'पथ' नहीं कहता। शेष शब्द विषय के अनुकूल हैं 'पथ' नहीं। सिर के बल नाचना आश्चर्य—महान् आश्चर्य का कारण हो सकता है। ऐसा कर सकनेवाला अत्यधिक प्रशंसा का पात्र हो सकता है पर सिर के बल नाचना नृत्यकला का उदाहरण नहीं है। उसी प्रकार 'अनामिका' की अद्भुत रचना अद्भुत है पर कविता नहीं है।

६. 'आधुनिक कवि' ७. पल्लविनी—रचयिता श्री० सुमित्रानन्दन पन्त !

पन्त जी की आरम्भिक और उसके बाद की रचनायें केवल वियत-प्रांत में अथवा कल्पना-जगत में जन्म लेती, फलती, फूलती और फैलती हैं। उनमें पृथ्वी की वस्तुओं का ठोसपन, उनकी वास्तविकता अथवा मनुष्य के लिये ज्ञान-गोचर सत्यता नहीं है। पर उनमें सौन्दर्य है, कोमलता है, संगीत है। शब्द-चयन स्वाभाविक और सरल नहीं है। विषय का चुनाव मस्तिष्क के द्वारा अध्ययन का आश्रय लेकर किया गया है-अनुभूति और कल्पना ने नहीं किया। उपमानों का भंडार सम्भवतः अंग्रेजी साहित्य में मिला है। फिर भी कवि की प्रतिभा ने इन सब को सुन्दरता से अपना लिया और अपने सुन्दर, कोमल व्यक्तित्व की छाप सब पर लगा दी। पर पन्त जी की हाल की रचनाओं में बहुत अधिक प्रयास और श्रम स्पष्ट प्रकट हो जाते हैं। "वह अपने घर में प्रवासिनी" (इससे अधिक सुन्दर "अपने ही घर में प्रवासिनी" होता और उसमें 'ही' के कारण करुणा भी अधिक होती) के अतिरिक्त पन्त जी की 'भारत माता' शीर्षक कविता में एक भी पंक्ति ऐसी नहीं है जो चिल्ला-चिल्ला कर यह न कहती हो कि उसे बहुत परिश्रम करके कवि ने गढ़ा है। पन्त जी की हाल की 'पार्थिव' रचनाओं में से अधिकांश के लिये यह कहना सत्य है।

७, ८ और ९. "आधुनिक कवि"; "नीरजा" और "रश्मि"-रचयिता श्रीमती महादेवी जी वर्मा।

महादेवी जी की कविता में संस्कृत-प्रधान शब्दावली होते हुए भी सरसता है; शब्द और अर्थ सम्पूर्ण कविता की आत्मा के और एक-दूसरे के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ पूर्ण साहचर्य रखते हैं। उनकी रचना करुणा-प्रधान हैं, पर कहीं इसका ध्यान भी नहीं होने पाता कि उन्होंने किसी ऐसे विषय पर रचना की है जिसका चुनाव केवल मस्तिष्क ने किया है। उनकी कविता पर उनके अपने कवि स्वमय-व्यक्तित्व की छाप है। भाषा महादेवी जी से अधिक संयत और सुन्दर इस काल के शायद ही किसी कवि की हो। सबसे बड़ी बात महादेवी जी की कविता में उसकी सच्चाई है। उन्होंने इसका कहीं उद्योग नहीं किया कि अपनी काव्य-साधना की परिधि को विस्तृत करने के लिये अपनी अनुभूति अथवा अपने व्यक्तित्व की वास्तविक परिधि से बाहर केवल कल्पना अथवा चिन्तन के सहारे बढ़ती चली जायँ। उनकी काव्यानुभूति की परिधि संकुचित सही—पर वास्तविकता और सचाई से दूर नहीं जाती।

मेरी राय में इस वर्ष का मंगलाप्रसाद पारितोषिक अपनी प्रकाशित रचनाओं पर श्रीमती महादेवी जी वर्मा को दिया जाना चाहिये।

बालकृष्ण राव

५

कानपुर २५।१।'४६

महोदय,

'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' के संबंध में मेरी सम्मति नीचे दी जाती है—

कई लेखकों की कृतियाँ एक से अधिक हैं। निर्णायक समिति के आदेशानुसार मैंने व्यक्तियों को ही, ऐसी परिस्थिति में, सामने रखा है और लेखक की एक से अधिक कृतियों को एक ही समझ कर निर्णय दिया है। मेरे विचार से सर्वोत्तम स्थान श्री माखनलाल चतुर्वेदी, का है और उनकी रचना हिमकिरीटिनी समस्त प्रस्तुत ग्रंथों में श्रेष्ठ है। उनकी एक ही रचना प्रतियोगितामें है। दूसरा स्थान, मेरी सम्मति में पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का है उनकी कृतियाँ प्रतियोगिता में एक से अधिक हैं। तीसरा स्थान मैंने श्री० सुमित्रानंदन जी पंत को दिया है। उनकी भी एक से अधिक कृतियाँ प्रतियोगिता में प्राप्त हुई हैं। मेरे निर्णय के कारण, संक्षेप में, नीचे दिए जाते है—

'हिमकिरीटिनी'—इस पुस्तक की सब से बड़ी विशेषता विचारों और भावों की अनेकरूपता है। अनुभूतियाँ बड़ी विस्तृत और उनका धरातल बड़ा व्यापक है। भावों और विचारों में गहनता भी है, राष्ट्रीय चेतना और जातीय जागरण का जैसा मार्मिक अंकन माखनलाल जी में है वैसा किसी भी दूसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि में नहीं है। भारतवर्ष का युगधर्म राष्ट्रीयता है और उसका युगप्रवर्ह भी राष्ट्रीयता है। अतएव युग प्रतिनिधि के रूप में माखनलाल जी अद्वितीय हैं।

दूसरी प्रवृत्तियों का अंकन भी 'हिमकिरीटिनी' में कम सफलता के साथ नहीं किया गया। न जाने कितनी दशाएँ और अंतर्दशाएँ, कितनी भावनाएँ उपभावनाएँ, कितने विचार और उपविचार अत्यंत रसात्मक और संकेतात्मक शैली में परस्पर उलझे हुए इस पुस्तक में मिलेंगे। यद्यपि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय जीवन के संघर्ष और ऊँचे सामयिक सिद्धांतों के विवाद और मन्तव्यों के निष्पक्ष ऊहापोह चतुर्वेदी जी में उस सीमा तक न मिलेंगे जिस सीमा तक युग बढ़ गया है और इस दृष्टि से 'निराला' जी और पंत जी कुछ आगे हैं पर कोरी संशयात्मकता को प्रश्रय देने वाला इन दोनों का काव्य मानसिक प्रत्यय के रूप में ही रह गया है और चतुर्वेदी जी जहाँ तक भी पहुँचे हैं उनमें काव्य की पूरी आकांक्षाएँ, और कला का पूरा रूप मौजूद है। उनकी उक्तियों में चिंतना के ऊँचे रूप पूरी भावुकता और रस में सराबोर हैं। माखनलाल जी की दूसरी बड़ी विशेषता उनकी भाषा की नवीनता और अकृत्रिमता है। पंत जी न उतने सरल हो सके और न उतने अकृत्रिम। 'निराला' जी सर्वत्र सरस और अशुष्क नहीं रह सके। अनुपम सुबोधता, भावानुकूल अभिव्यंजन, अद्वितीय लाक्षणिकता, सस्ते शब्दों का गहरा मोल, इत्यादि कुछ अनुपम गुण माखनलाल जी की भाषा में हैं। वास्तव में छायावाद का अभिव्यंजन पक्ष उन्हीं में पहले पहल अवतीर्ण हुआ है, और वही इसके सबल उदाहरण हैं।

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—इनकी कृतियों में रमणीयता है और संस्कार की छाप है। भाषा के ऊबड़-खाबड़ प्रयोग में ये नहीं फँसते। रस से कहीं अधिक इनका ध्यान विचारों पर टिकता है, और काव्य से कहीं अधिक इनमें संगीत मिलता है। ये व्यष्टि के रागद्वेष को समष्टि के मत्थे मढ़ सकते हैं और कृति को ऊँचा उठाकर चमका सकते हैं। ये चमत्कार पैदा कर सकते हैं, और उसे दिखा भी सकते हैं। ऊँची चिंतना की गतिविधि को इसमें बाँधने का प्रयास भी करते हैं; पर आचार्य भाव मन में नहीं भुला सकते। इसीलिए रचनाओं में घुलावट नहीं आती। विषयों की अनेकरूपता भी है; पर अभिव्यक्ति में एक-सी व्यवस्था है। कहने के जितने ढंग माखनलाल जी ने दिए हैं उतने किसी कवि ने नहीं दिए। परंतु 'निराला' जी का सबसे बड़ा गुण उनकी रचनाओं का वेग और उग्रता है।

श्री सुमित्रानंदन पंत—इनकी रचनाओं में एकनिष्ठा तो है पर बल की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपस्थिति सर्वत्र एक-सी नहीं है। इनका ध्यान आरंभ काल में भाषा की सुकुमारता और अभिव्यंजना की कोमलता पर अधिक जमा; और आज शैली की सर्वजनीनता और रुचि की आकांक्षा पर अधिक है। प्रेम और भक्ति लेकर चले और अब साम्यवाद और मार्क्सवादी प्रगतिवाद तक पहुँचे हैं। पहले के चित्रों में घुलावट थी, व्यापकता थी; पर विचारों का हलकापन था। आज के चित्रों में सादापन और जन-मन भावनता भी है पर घुलावट का नितान्त अभाव है। रूप-व्यापारों को हृदय में घुलावट के साथ मिलकर बाहर निकलने में समय के लम्बे फैलाव की अपेक्षा होती है। इसी प्रकार चिन्तना के किसी प्रत्यय को भी—चाहे वह मार्क्सवाद हो या गांधीवाद हो—मन में घुलकर सरस काव्य में बाहर निकलने में उसमें भी अधिक देर लगती है। अतएव जो कवि बिना घुलावट के ही किसी वाद से पराजित होकर उसे काव्य में प्रचार का विषय बनाता है वह तुकड़ होकर रह जाता है। प्रगतिवाद के नाम पर वह कवि नहीं कहला सकता। निराला जी का प्रगतिवाद कुछ अधिक सुलझा हुआ है। परिचित रूप व्यापारों को सामने रखने के वे अभ्यस्त हैं। इसी से उनमें बल है, माखनलाल जी की प्रतिभा प्रगतिवाद के वाद में नहीं फँसी; पर वे नवीन और मौलिक हैं। प्राचीनता का नवीन मूल्यांकन उनमें पर्याप्त मिलता है। यह प्रगतिवाद की अच्छी टीका है।

सद्गुरुशरण अवस्थी

६

मेरी सम्मति में नीचे लिखी पुस्तकों ने क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त किया है—

प्रथम—पल्लविनी और आधुनिक कवि-श्री सुमित्रानन्दन पन्त।

द्वितीय—अनामिका और परिमल श्री 'निराला'।

तृतीय—हिमकिरीटिनी श्री माखनलाल चतुर्वेदी।

मेरे निर्णय की पुष्टि में निम्नलिखित कारण हैं।

(१) प्राकृतिक सौन्दर्य का मनोरम चित्रण, जीवन में प्रगति लाने का प्रयास, मञ्जु, मसृण, कोमल भाषा, भाषा में स्वाभाविक प्रवाह, छन्दों में अलौकिक संगीत, भावानुकूल भाषा और छन्द, ग्राम्य जीवन का चित्रण, लाक्षणिक शैली, कल्पना, मनोराग और चिन्तन का सुन्दर सामञ्जस्य, प्रकृति के असंख्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपों का अलौकिक चित्रण, प्रसाद, माधुर्य और ओज का यथास्थान सन्निवेश और आधुनिक समस्याओं का यत्र तत्र समाधान।

(२) छन्द, शैली, एवं भावों में नवीनता, उच्चकोटि की दार्शनिकता, भाषा सशक्त और सुन्दर, ओज गुणकी प्रधानता, किन्तु बँगला-काव्य का प्रभाव स्पष्ट और यत्र तत्र गद्यवत् पद्य, छन्दों में प्रवाह का प्रायः अभाव।

(३) देश-प्रेम का अनुभूति पूर्ण चित्रण, त्याग और तपस्या की स्पष्ट झलक, भाषा सशक्त और ओजपूर्ण, किन्तु भाव यत्र-तत्र अस्पष्ट, भाषा कुछ-कुछ खिचड़ी-सी।

अन्यान्य ग्रन्थों में महादेवी की रचनायें उत्तम पर विषय-विभिन्नता का अभाव, अस्पष्टता बहुत अधिक और केवल करुण रस। अन्यान्य रचनाओं में पद्यों की अधिकता, काव्यत्व बहुत कम।

श्री जगन्नाथराय शर्मा,

७

दिल्ली १२-४-४६

श्री संयोजक महोदय,

श्री मंगलाप्रसाद पारितोषिक समिति,

प्रिय महोदय,

मंगलाप्रसाद पारितोषिक समिति ने जो ११ पुस्तकें निर्णयार्थ मेरे पास भेजी थीं, उनपर अपना निर्णय भेज रहा हूँ, मुझे अत्यंत खेद है कि निर्णय भेजने में अत्यधिक विलंब हुआ। कृपया क्षमा करें।

आपका
वियोगी हरि

सम्मति

मेरे पास निम्नलिखित पुस्तकें सम्मत्यर्थ आई हैं—

१. अनामिका }
२. परिमल } निराला

३. आधुनिक कवि २ }
४. पल्लविनी } सुमित्रानन्दन पंत

५. रश्मि }
६. नीरजा }
७. आधुनिक कवि १ } महादेवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८. हिमकिरीटिनी—माखनलाल चतुर्वेदी
९. सुघर गँवारिन रामजीदास वैश्य
१०. वीर विक्रमादित्य—शिवाधार पांडेय
११. परतंत्र—रघुवीरशरण मित्र

समिति के निश्चयानुसार निराला की १ एवं २ संख्यावाली रचनाओं को एक, पंत की ३ व ४ संख्यावाली रचनाओं को एक तथा महादेवी की ५ ६ और ७ संख्यावाली रचनाओं को एक मान लेता हूँ।

भली भाँति विचार करने के पश्चात् मैं न्यायतः निम्नलिखित निर्णय पर पहुँचा हूँ :—

प्रथम श्रेणी की रचनाएँ—'परिमल' तथा 'अनामिका'

द्वितीय श्रेणी की रचनाएँ—'पल्लविनी' 'आधुनिक कवि (२) 'नीरजा, रश्मि और आधुनिक कवि (१)

तृतीय श्रेणी की रचना—''हिम-किरीटिनी',

'वीर विक्रमादित्य' 'परतंत्र' और'सुघर गँवारिन' साधारण कोटि की पुस्तकें हैं, अतः इन पर विचार नहीं किया है।

इस निर्णय के अनुसार मैं पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की रचनाओं को सर्वोत्तम मानकर मंगलाप्रसाद-पारितोषिक के योग्य समझता हूँ। ''परिमल'' और ''अनामिका'' पर पारितोषिक दिया जा सकता है।

पंत और महादेवी की रचनाएँ भी उत्तम हैं—पंत की तो महादेवी की रचनाओं से भी उत्तम हैं, किन्तु 'निराला' की रचनाओं में जो उज्ज्वल और प्रखर मौलिकता, अन्तर्वेधिनी कवि-दृष्टि और अपूर्व चमत्कार-प्रदर्शन है, वह, उसी मात्रा में, 'नीरजा' 'रश्मि' और 'पल्लविनी' में नहीं पाता। यद्यपि पंत और महादेवी की कोई-कोई कविता निराला की रचनाओं से आगे निकल जाती है, तो भी कुल मिलाकर कवि-प्रतिभा का जो चमत्कार निराला में मिला वह इन कवियों में सुलभता से नहीं पाया। यदि 'युग-प्रवर्तक' शब्द का प्रयोग किसी आधुनिक कवि पर किया जा सकता है तो 'प्रसाद' के बाद 'निराला' कवि ही उसका अधिकारी है। इन सब दृष्टियों से मैं 'निराला' की रचनाओं को सर्वोत्तम मानता हूँ।

यदि 'निराला' की रचनाएँ मेरे सामने न होतीं तो निस्सन्देह मैं 'पंत' की रचनाओं को सर्वोत्तम स्थान देता।

'हिमकिरीटिनी' द्वितीय श्रेणी में स्थान पा सकती थी; किन्तु पंत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और महादेवी की रचनाओं की कक्षा में इसे रखने का मेरा साहस नहीं हुआ।

यदि 'निराला', पन्त और महादेवी की रचनाएँ इस प्रतियोगिता में न आई होतीं, तो माखनलाल जी की 'हिमकिरीटिनी' ने ही सर्वोत्तम स्थान पाया होता।

वियोगी हरि

हरिजन-निवास, दिल्ली

८

महोदय,

आपकी भेजी हुई सूची के अनुसार इस पारितोषिक के निर्णय के लिये १९ पुस्तकें मिलीं। मैंने सभी पुस्तकों को ध्यानपूर्वक पढ़ा और नियमों के अनुसार प्रतियोगिता की दृष्टि से विचार किया। मेरी सम्मति में नीचे लिखी पुस्तकों ने क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त किया है:—

प्रथम—आधुनिक कवि २, पल्लविनी

द्वितीय—हिमकिरीटिनी

तृतीय—आधुनिक कवि १, रश्मि, नीरजा

मेरे निर्णय की पुष्टि में निम्नलिखित कारण हैं।

श्री सुमित्रानंदन पंत १. आधुनिक कवि २ पल्लविनी ये मुक्तक गीतिकाव्य हैं। पंत युगप्रवर्तक कवि हैं। नवयुग लाने का श्रेय उन्हें है; उसकी आकांक्षाओं एवं प्रवृत्तियों के वे प्रतिनिधि कवि हैं। अपने अविराम प्रयत्नों से खड़ीबोली के निर्जीव कंकाल को उन्होंने नवजीवन प्रदान किया है। उनकी वाणी में शिशु का भोलापन, तारुण्य का मदिर आवेग एवं द्रष्टा का विरति विवेक भी है।

आधुनिक काव्य की प्रधान प्रवृत्ति प्रकृति एवं रहस्यात्मक अनुभूतियों पर आश्रित गीतिकाव्य की है। पंत प्रधानतया कला और सौन्दर्य के गीत-कवि है। लहरों का गीत, उषा वंदना, उर की डाली, मधुकरी, मानव, कलरव वसंत आदि छोटे-छोटे गीतों से चारों ओर सुकुमारता और स्निग्धता बिखरी पड़ती है। पंत के गीति काव्य में भावनाओं का एक सरल स्वच्छंद अकृत्रिम आवेग प्रायः सर्वत्र विद्यमान है। अनायास ही उनके गीतों की पहली कड़ी आगामी भाव दशाओं की सूचना दे देती है और पाठक मुग्धकारी संगीत की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लय के साथ कवि हृदय से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। महादेवी जी की अनुभूति यहाँ चाहे न मिले किन्तु शब्दों की मधुरिमा और स्वर संधान कवि की चित्रग्राहिणी शक्ति से मिलकर एक ऐसा चित्रपट प्रस्तुत कर देता है जिसमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म रंग, छाया और प्रकाश से भरित एक साकार चित्र का दर्शन होता है।

रूपचित्रण में पंत अद्वितीय हैं। एकतारा, अप्सरा, ग्राम युवती, धोबियों का नृत्य आदि कविताएँ इसके उदाहरण हैं। कीट्स की सी मादकता एवं ऐन्द्रियता कहीं-कहीं पर है किन्तु वह गीत कवि की निश्छलता के अनुकूल है जो पाठक को विश्वस्त मानकर वशीभूत कर लेती है।

पंत और प्रकृति का अन्योन्य संबंध है। प्रकृति ने ही उन्हें कवि बनाया। प्रकृति को आलम्बन बनाकर जैसी कोमल एवं उल्लासमयी अनुभूतियाँ पंत ने प्रकट की हैं वैसी अन्य आधुनिक हिन्दी कवियों में हमें न मिलेंगी। प्रकृति के सरल, शांत, स्वच्छंद रूप के साथ-साथ उसका संश्लिष्ट रूप भी भावात्मक पद्धति पर कवि ने अभिव्यक्त किया है। हरित-पीत, नील-धूमिल आदि वर्ण में रँगी प्रकृति का वर्ण-परिज्ञान के साथ मनोरम चित्र यहाँ है। इस क्षेत्र में पंत सहज ही अपनी मौलिक छाप रखते हैं। प्रकृति की पृष्ठभूमि पर ही आशा-निराशा, राग-द्वेष, दुःख-सुख, संयोग-वियोग आदि अनेक मनोवृत्तियों का मार्मिक चित्रण हुआ है। ऊषा, मरुत, अरुण आदि वैदिक युग में प्रत्यक्ष जीवधारी थे। पंत भी उन्हें उसी रूप में लेते हैं और अवसर विशेष पर आध्यात्मिकता एवं विश्व-जीवन की गतिविधि से अनुप्राणित कर देते हैं। इस प्रकार कवि ने आंतरिक और बाह्य सुषमा सौन्दर्य को सूक्ष्म दृष्टि से देखकर उनमें एकता स्थापित की है।

मानसिक संघर्ष के साथ कवि ऐतिहासिक भौतिकवाद के आधार पर आत्मोत्कर्ष और सामाजिक अभ्युत्थान के लिये भी प्रयत्नशील है। उसकी सुन्दरता की भावना जगत और जीवन के प्रकृति क्षेत्रों में प्रविष्ट होकर कुछ ज्ञानमूलक बनी है। उसके हृदय का प्रसार लोककल्याण के पथ पर हुआ है। भावना से चिन्तन की ओर उसका विकाश कुछ आलोचकों के मत में कलाविहीन है किन्तु मैं तो उसे अनुभूति की सत्यता और प्रभविष्णुता का ही रूप समझता हूँ। जीवन के प्रति नवीन अनुराग से कवि की वाणी ने चैतन्य रूप धारण कर लिया है। जिस संक्रांति काल में मानव सभ्यता पड़ी है उसके स्वर से कवि कैसे अछूता रह सकता है। कविता युग की वाणी भी है और वैज्ञानिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम से वही युग की वाणी युग-युग की वाणी भी बन जाती है। किसी भी समय कविता युग की वाणी से विच्छिन्न नहीं हुई। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है।

वर्ग-संघर्ष और राजनैतिक दाँवपेचों के मध्य सांस्कृतिक चेतना को कवि लाना चाहता है उसके लिये उसका प्रयत्न श्लाघ्य है। वह अपनी कल्पना के मोहक स्वप्नों को वस्तु-जगत में प्रकट कराना चाहता है। जीवन की पूर्णता का आदर्श वस्तु-जगत के यथार्थ में खोजना हमारा प्राचीन ब्रह्मवाद ही तो है किन्तु मुझे विश्वास है कि पंत जगदर्शन और आत्म दर्शन के समन्वय का रूप कभी छोड़ नहीं सकते। 'मौन निमंत्रण', 'परिवर्तन', 'नित्यजन' जग में कवि के भाव हमारी आध्यात्मिक साधना के अनकूल ही हैं।

चित्रमयी भाषा और लाक्षणिक वैचित्र्य से संपन्न कल्पनाप्रधान कवि पंत क्रमशः विकसित होकर व्यक्त जगत से स्फूर्ति ग्रहण कर भावप्रधान एवं चिन्तनप्रधान हो गए हैं। लोकपथ की मंगलज्योति की आराधना में वह तल्लीन हैं। जीवन की जिन विविध वृत्तियों को पंत ने व्यंजित किया है वहाँ तक प्रतियोगिता की अन्य रचनाएं नहीं पहुँच सकतीं।

२. हिमकिरीटिनी— राष्ट्रीय अनुभूति से परिपूर्ण यह एक मुक्तक काव्य है, जिसके स्वर में एक करुण-विह्वल किन्तु क्रांतिकारी आत्मा का निवास है। विदेशी शक्ति से पददलित यातनाओं में तपे हुए भारतीय हृदय की ओजभरी वाणी इसमें है।

माखनलाल जी चतुर्वेदी जीवन के क्रियमाण रूप को राष्ट्रीय साधना से भिन्न नहीं समझते। राजनीति उनकी साधना का केन्द्र है। उनके प्रेम, विरत, सुख-दुःख में राष्ट्र की ही वेदना घनीभूत है। मानों कवि की संपूर्ण रहस्यानुभूति एवं आध्यात्मिकता राष्ट्रीयता के परिधान में ही उतरी है। राष्ट्रप्रेम और ईश्वर-प्रेम में कवि कोई भेद नहीं देखता। उसके लिए सूली में एक दिव्य रस तथा मरण ज्वर में अनंत आकर्षण, है। 'सीस उतारै भुंइ धरै तब पैठे घर मांहि। वाला संतों का बलिदान भाव लेकर वह राष्ट्र की पूजा में अग्रसर हुआ है। उसी में जीवन का उत्कर्ष और आत्मा की विजय है। बलिदान में ही उसकी तपस्या की पूर्णता है। दमन के कष्ट आत्म विकास एवं धर्म के अङ्ग बन गए हैं।

चतुर्वेदी जी में रहस्यवादियों की 'प्रेम की पीर' है पर उसकी वेदना जीवन की कर्मभूमि से उत्पन्न है। अतएव उसकी कातरोक्तियाँ रहस्यवादियों की प्रायः काल्पनिक या कलात्मक विरहोक्तियों से अधिक संवेदनशील एवं विदग्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। निगड़ बेड़ियों में विद्ध आत्मा के अश्रुओं में अव्यक्त के लिये गिराए गए अश्रुओं से अधिक आकुलता का होना स्वाभाविक ही है।

सौन्दर्य, प्रेम, विरह, ज्ञान आदि जीवन के विविध क्षेत्रों में कवि राष्ट्र-हित बलिदान की ही उदात्त झलक पाता है। राष्ट्रीय कर्मभूमि पर प्रकृति का संश्लिष्ट चित्र उसने रखा है। कोकिल की ध्वनि सुनकर उसे जंजीरों की झंकार याद आती है और झरना के आवेग में राष्ट्रीय सक्रियता का रूप वह देखता है

देश-भक्ति का जो प्रखर स्वर हिमकिरीटिनी में मुखरित है उसमें उत्साह की विभिन्न अंतर्दशाओं की व्यंजना भी है। अवसाद और खिन्नता नहीं है, आवेश एवं तीव्र भावावेश है। वर्तमान की समस्याएँ भी काव्य में शाश्वत स्थान रखती हैं क्योंकि उनके भीतर व्याप्त उत्पीड़ित मानवता का चिर क्रंदन सत्य है। भाषा का प्रसन्न प्रांजल प्रवाह एवं ध्वन्यात्मकता उक्त काव्य में यथेष्ट है परन्तु भावानुकूल संगीत सामंजस्य चित्रोपमता, भव्य कल्पना उपचार वक्रता प्रकृति का विभिन्न रूपों में भावात्मक निरीक्षण एवं जीवन की अधिक मनोदशाओं का चित्रण सहज ही आधुनिक कवि २ और पल्लविनी के शीर्ष स्थान पर रख देता है।

रश्मि
नीरजा
आधुनिक कवि १ } श्रीमती महादेवी वर्मा

ये रचनायें मुक्तक गीत काव्य हैं। उनमें महादेवी जी वेदना की प्रधान उपासिका के रूप में प्रकट हुई हैं। विश्व साहित्य में ही वेदना का रस अधिक व्यापक है। प्रेमाख्यानक कवियों के भावात्मक रहस्यवाद को मधुर भाव के साथ महादेवी जी ने अपनाया है। 'स्थूल' को छोड़कर 'सूक्ष्म' की ओर वे प्रवृत्त हैं परन्तु उनका यह 'सूक्ष्म' जीवन का सूक्ष्म है, जिसमें संवेदनशील जीवन का दिव्य सत्य निहित है। स्थूल जग की अपूर्णता से विक्षुब्ध होकर अव्यक्त पूर्णता को खोज करने वाली आत्मा सदैव विरहित रही है। इसी से महादेवी को हम दुःखवादी दर्शन में निमज्जित पाते हैं।

प्रकृति के विविध रूप व्यापारों में एक परम हृदय की झलक पाकर उससे चिरमिलन के लिये वे उत्कंठित हैं। मायावी जगत की विषमताओं एवं द्वंद्वों का चित्र वह नहीं है, जो संतों की परम्परा में हमें मिलता है परन्तु चिरंतन विरह का भाव उनके प्रत्येक स्वर से निनादित हो रहा है। इस वियोग में ही उन्हें आनन्द की अनुभूति होती है। कहीं-कहीं चिर मिलन का भाव भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उनकी प्रेम साधना व्यक्तित्व के सहारे उठकर प्रकृति के अंग-अंग में व्याप्त हो गई है। अव्याहत द्रष्टा की अंतर्मुखी साधना में लीन रहने के कारण महादेवी का क्षेत्र ऐकांतिक व्यक्तिगत साधना का है। लोकपक्ष का उसमें अभाव है। संत वाणियों का सा अमर स्वर उनमें है किन्तु वैसी तीव्र अनुभूति नहीं। वेदना उनके लिये एक गंभीर चेतनता है, आनन्द है। जीव-प्रकृति जड़-चेतन सब को वे अपनी करुणा से ओत प्रोत किये हैं। प्रकृति के चित्र कोमल स्निग्ध रूपकों से छायावाद की व्यंजना-प्रधान शैली में मार्मिकता के साथ अंकित हुये हैं। करुणा की सघनता, तल्लीनता, मधुर संगीत एवं व्यञ्जक शब्द चित्र सराहनीय हैं। गीतिकाव्य के क्षेत्र में एक निश्चिन्त निर्द्वन्द नारी कंठ की विरह विह्वल वाणी पाठकों को तुरन्त ही आत्मीय बना लेती है। आत्म निवेदन एवं आत्म विस्मृति उनके गीतों में मुक्त आनंद से भरे हैं। महादेवी जी की एक-रसता अवश्य कुछ ऊब देती है। भावों की विविधता उपर्युक्त रचनाओं में नहीं है। प्रायः एक से रूपकों की आवृत्तियाँ हुई हैं। लोक के प्रति उदासीनता भी खटकती है। पंत एवं चतुर्वेदी जी का क्षेत्र व्यापक है। जगत और जीवन के कर्म क्षेत्र की अनुभूतियां ऐकांतिक अनुभूतियों की अपेक्षा अधिक मंगल-दायिनी तथा प्रभावशालिनी हैं।

१२-६-४६

गुरुप्रसाद टंडन

सेवा में संयोजक मंगलाप्रसाद पारितोषिक समिति
हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग।

महोदय,

आपकी भेजी हुई सूची के अनुसार इस पारितोषिक के निर्णय के लिये १० पुस्तकें मिलीं। मैंने सभी पुस्तकों को ध्यानपूर्वक और नियमों के अनुसार प्रतियोगिता की दृष्टि से विचार किया। मेरी सम्मति में नीचे लिखी पुस्तकों ने क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त किया है। —

प्रथम — श्रीमती महादेवी वर्मा की पुस्तकें
द्वितीय—श्री सुमित्रानंदन पन्त की पुस्तकें
तृतीय—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की पुस्तकें
मेरी सम्मति के कारण संक्षेप में यह हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन तीनों कवियों की कविताएँ मुझे बहुत दिनों से प्रिय हैं। इसीलिये इनमें से किसी एक को श्रेष्ठ घोषित करने में मुझे व्यक्तिगत रूप से संकोच होता है। परन्तु जब मैं निर्णायक होना स्वीकार चुका हूँ तो धर्मतः ऐसा घोषित करने को बाध्य हूँ। मैंने निर्णय करने में जल्दी नहीं की है। मैंने काव्य गुणों की दृष्टि से भी इन पुस्तकों पर विचार किया है। और फिर यह भी विचारा है कि किस के काव्य से ज्यादा शान्ति और बल मिलता है। निस्सन्देह महादेवी वर्मा की कविताओं से अन्य कविताओं की अपेक्षा अधिक शान्ति मिलती है। इसीलिये मैंने अपना यह निर्णय दिया है कि उन्हें ही इस वर्ष का पुरस्कार मिलना चाहिए।

हजारी प्रसाद द्विवेदी

सेवा में संयोजक, मङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक-समिति
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,
प्रयाग।

महोदय,

आप की भेजी हुई सूची के अनुसार इस पारितोषिक के निर्णय के लिये ग्यारह पुस्तकें मिलीं। मैंने सभी पुस्तकों को ध्यानपूर्वक पढ़ा और नियमों के अनुसार प्रतियोगिता की दृष्टि से विचार किया। मेरी सम्मति में नीचे लिखी पुस्तकों ने क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त किया है—

प्रथम—आधुनिक कवि (१), नीरजा, रश्मि (श्रीमती महादेवी वर्मा)

द्वितीय—अनामिका, परिमल (श्री निराला जी)

तृतीय —आधुनिक कवि २ —पल्लविनी (श्री पन्त जी)

मेरी सम्मति के कारण संक्षेप में यह हैं।

(१) श्रीमती वर्मा की कविताओं के अध्ययन से मैं बहुत प्रभावान्वित हुआ। उनमें भाषा की सफाई खूब है। भाव बहुत सुलझे हुए, मर्मस्पर्शी और बोधगम्य हैं। प्रसाद-गुण की अधिकता है। कवित्व का माधुर्य और कल्पना का चमत्कार हृदयङ्गम करने में अनावश्यक प्रयास नहीं होता। वे हिन्दी पाठकों को रसानुभूति की स्वाभाविक धारा में अपने साथ ले चलती हैं। उन्हें समझने के लिए मस्तिष्क को ठिठकना नहीं पड़ता; क्योंकि वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदय को बड़ी कोमलता से छूती हैं। जनप्रिय होने की उनमें पूरी क्षमता दीख पड़ी।

(२) श्री निराला जी की कविताओं में प्रखर पाण्डित्य और सूक्ष्मतम दार्शनिकता का गाम्भीर्य है। भाषा पर भी उनका असाधारण अधिकार है, फिर भी वे दुरूहता से सर्वथा मुक्त नहीं जान पड़े। प्राञ्जलता के अभाव का अनुभव ठौर-ठौर होता रहा। काव्यसौष्ठव को निगूढ़ता गर्भस्थ किये रहती है। कवि और पाठक का साथ सर्वत्र नहीं निबहता। विद्वानों और काव्यमर्मज्ञों के अतिरिक्त काव्यानुरागी जनता के लिए उनके भाव सुगम या सुलभ नहीं जान पड़े। मस्तिष्क का वैभव दर्शनीय है।

(३) श्री पन्त जी की कविताओं में सुकुमार भावनाओं की मधुर अभिव्यक्ति बड़ी अनूठी है। उनकी कल्पना की दृष्टि बड़ी पैनी और मर्मभेदिनी है। फिर भी उन्हें समझने के लिए तत्त्वग्राही मस्तिष्क और अतलस्पर्शिनी मेधा की आवश्यकता है। भाषा में लालित्य है, भाव में गहनता। सब श्रेणी के पाठक उनकी बारीकियों के टटोलने में सफल नहीं होंगे। प्रतिभा का विलास मनोरम है।

शिवपूजन सहाय

श्री कृष्ण जन्माष्टमी सं २००३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक परिचय

[सदानन्द मिश्र 'साहित्यरत्न']

अपने पथ पर -- (खण्ड काव्य) रचयिता श्री शिशुपाल सिंह जी' शिशु' प्रकाशक—मारवाड़ी नवयुवक मंडल, मारवाड़ी बाज़ार हैदराबाद (दक्षिण) प्रकाशन संवत २००३ मूल्य १) पृष्ठ संख्या ७८ छपाई सफाई उत्तम।

'शिशु' जी ने एक छोटी ऐतिहासिक आख्यायिका (जिसका सम्बन्ध इतिहास प्रसिद्ध राजस्थान केशरी महाराणा प्रताप सिंह जी से है) लेकर 'अपने पथ पर' नामक खण्ड-काव्य की रचना की है। काव्य में कवि एक ओर राणा के गुप्तचर फत्ता की वीरता, साहस और अडिग धैर्य का सुन्दर चित्रण कर पाठकों को चकित करता है और दूसरी ओर महाराणा की क्षत्रियोचित शीलता, न्याय-प्रियता और क्षमा की कमनीय झाँकी दिखाकर पाठकों के हृदय-पटल पर एक दिव्य प्रभाव छोड़ देता है। भारतीय वीरों के दो मुख्य गुण धैर्य और क्षमा का सुन्दर समन्वय एक छोटी सी आख्यायिका में कवि ने बड़े ही कौशल से किया है। प्रकृति वर्णन में कवि को यथेष्ट सफलता नहीं प्राप्त हो सकी है। भाषा सरल, ओजपूर्ण और प्रवाहमय है।

चट्टान—(कविता संग्रह) रचयिता रामइक़बाल सिंह 'राकेश' प्रकाशक ग्रन्थमाला कार्यालय पटना मूल्य २॥) पृष्ठ संख्या ६४ छपाई सफाई उत्तम।

इसमें 'राकेश' जी की समय समय पर प्रकाशित २६ कविताएँ संगृहीत की गई हैं। कवि ने वैयक्तिक अनुभूति की शैली और आधुनिक प्रगतिशील शैली दोनों का आश्रय लिया है। अधिकांश कविताओं में कवि ने माधुर्य और प्रसाद गुण की परवा न कर ओज गुण को स्थान दिया है। कवि ने 'धनकटनी' आदि कविताओं में श्रमिकों की दशा का सहृदयता के साथ चित्रण किया है। कुछ आध्यात्मिक विचार भी यत्र तत्र दिखाई पड़ता है संग्रह की दो तीन कविताएँ 'विराट दर्शन' और हिमालय अभियान आदि उच्च कोटि की बन पड़ी हैं। कवि देश काल और समाज की परिस्थितियों से जागरुक है। कविता का भाव हृदयंगम करने के लिए कहीं-कहीं कठिन प्रयास की आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

113053 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चों का पालन-पोषण—लेखक ब्रजमोहन मिहिर प्रकाशक साहित्य-कुन्ज पो० एग्रीकल्चरल इंस्टिट्यूट नैनी, इलाहाबाद मूल्य २।) पृष्ठ संख्या २०३

बच्चे राष्ट्र की भावी संपत्ति हैं उन्हीं पर देश की उन्नति निर्भर है। उनको स्वस्थ प्रसन्न और मेधावी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उनका सुन्दर ढंग से पालन-पोषण किया जाय।

प्रस्तुत पुस्तक में श्री मिहिर जी ने गर्भावस्था से लेकर पाँच वर्ष तक के बच्चे की रक्षा, स्वास्थ्य, भोजन आदि सभी बातों पर अच्छा प्रकाश डाला है इसके अतिरिक्त बच्चों के रोग और उनकी घरेलू चिकित्सा का वर्णन कर लेखक ने इस पुस्तक का महत्व बढ़ा दिया है। हिन्दी में ऐसी पुस्तकों का प्रायः अभाव सा है। आशा है नारी जगत इसका समुचित समादर करेगा

आई-आणद-विलास (धार्मिक ग्रन्थ) श्री व्यास भवानीदास जी लालावत (पुष्करणा) कृत संपादक चौधरी शिवसिंह मल्ला जी चोयल प्रकाशक सीरवी नवयुवक मण्डल, बिलाड़ा (मारवाड़) प्रकाशन संवत् २००३ मूल्य २) पृष्ठ संख्या ११८

प्रस्तुत ग्रन्थ आई पन्थियों का पूज्य ग्रन्थ है। उक्त पंथियों के दैनिक पाठ करने के लिए इस पुस्तक का सम्पादन किया गया है। पुस्तक में आई माता के अवतरित होने से लेकर उनके अंतर्ध्यान होने तक की सम्पूर्ण कथा राजस्थानी पदों में कही गयी है। प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ने से लोक गीतों का सा आनन्द आता है। आचार-व्यवहार की भी शिक्षा दी गयी है।

जती भगा बाबा जी पवाँर—संपादक, चौधरी शिवसिंह मल्ला जी चोयल प्रकाशक, सीरवी नवयुवक मंडल बिलाड़ा (मारवाड़)। प्रस्तुत पुस्तक में मारवाड़ के संत कवि जती भगा बाबा जी पवाँर का जीवन चरित्र वर्णित है, उनकी रचना को भी इसमें सम्मिलित किया गया है।

सीरवी क्षत्रिय जाति का इतिहास-संपादक और प्रकाशक उपर्युक्त। प्रस्तुत पुस्तक में सीरवी जाति का संक्षिप्त इतिहास वर्णित किया गया है।

सदानन्द मिश्र 'साहित्य रत्न'

राजयक्ष्मा विज्ञान—लेखक पं० पारसनाथ पाठक, शंकर औषधालय, सीतामढ़ी, मुजफ्फरपुर, बिहार, प्रकाशक स्वयं, प्रथम संस्करण सं० २००३, मूल्य २)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत पुस्तक कुख्यात राजयक्ष्मा रोग पर लिखी गई है, जो आज हमारे साथ नवयुवक समाज के पीछे हाथ धोकर पड़ा है। आजकल इस रोग से मरने वालों नवयुवकों तथा नवयुवतियों की संख्या में साठ से भी अधिक है। इस महाभीषण रोग एवं उसके भीषण परिणाम को जानते हुए भी हमारे देश में उसके प्रतिकार के लिए जो सरकारी या सार्वजनिक उपाय किए गए हैं वह अपर्याप्त और कुछ अंशों में अव्यावहारिक भी हैं। सेनिटोरियम की सुविधाएँ बड़े से बड़े लोगों को ही अनुकूल हो सकती है, हमारे देश का साधारण व्यक्ति वहाँ दस दिन ठहरने की भी शक्ति नहीं रखता। ऐसी अवस्था में इस साहित्य का प्रकाशन महत्त्वपूर्ण है। लेखक ने अनेक वैज्ञानिक दृष्टियों से पुस्तक को महत्त्वपूर्ण बनाया है। राजयक्ष्मा के विभिन्न पहलुओं पर भारतीय एवं पाश्चात्य पद्धतियों का उसने विश्लेषण किया है, और ऐसे उपाय बताये हैं जो ग्रामीणों को भी हितकर हो सकती हैं।

रोगी की परिचर्या एवं मानसोपचार के गुर बहुत ही महत्त्वपूर्ण और प्रभावोत्पादक हैं। सुविधाजनक खान पान एवं रहन सहन के क्रम का भी इसमें उल्लेख किया गया है। इस प्रकार कुल मिलाकर पुस्तक की उपयोगिता सर्वमान्य है, हिन्दी पाठकों को इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

पुस्तक में प्रूफ की अशुद्धियाँ बहुत अधिक हैं, जिससे पढ़ने में बड़ी कठिनाई पड़ती है, आशा है अगले संस्करण में उसका परिमार्जन कर पुस्तक को अधिक महत्त्वपूर्ण बनाया जायगा।

रहीम के दोहे—संकलयिता अज्ञात प्रकाशक भदन्त आनन्द कौसल्यायन प्रधानमंत्री राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, मूल्य सात आने

प्रस्तुत पुस्तक में कविवर रहीम के २५७ दोहों का संग्रह किया गया है प्रारम्भ में १५ पृष्ठों तक रहीम का विस्तृत परिचय दिया गया है, जो विद्यार्थियों के लिए परम उपयोगी है। अन्त में १६ पृष्ठों में टिप्पणियाँ दी गई है, जिनसे क्लिष्ट शब्दों तथा दोहों का अर्थ भी आसानी से समझ में आ जाता है। यह परीक्षार्थियों के बड़े काम की चीज है।

मुहावरे और कहावतें, संकलयिता श्री रामेश्वर दयालु दुबे एम० ए० प्रकाशक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, मंत्री, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा प्रथम संस्करण १६४५, मूल्य बारह आने, पृष्ठ संख्या ८०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भाषा के सूक्ष्म तत्व मुहावरे और कहावतों में निहित रहते हैं। बिना मुहावरों और कहावतों के चलती या सजीव भाषा लिखना दुष्कर होता है। इसीलिए प्रारम्भ में परीक्षार्थियों से मुहावरे और कहावतें सीखने की अपेक्षा की जाती है। प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी में अपने ढंग की अनोखी है। क्योंकि इनमें मुहावरों और कहावतों का विभाजन कर परीक्षार्थी की कठिनाई भी हल कर दी गई है। जिसमें पहले सरल तथा धीरे धीरे अपेक्षाकृत कठिन मुहावरों का संकलन किया गया है। इन मुहावरों का अर्थ ही नहीं वरन प्रयोग भी बतलाया गया है, जिससे उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। हिन्दी सीखने वाले इससे अधिक लाभ उठा सकते हैं।

रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

संवत २००२ का परीक्षाफल प्रकाशित हो चुका है, पुनर्निरीक्षण में जो विद्यार्थी उत्तीर्ण हुए हैं उनकी सूची निम्न प्रकार से है।

सम्पादक।

उत्तमा क्र० सं० ६६ रत्नसंख्या ३०७८ श्री श्यामसुन्दर यात्री उ० १६२
" " १४७ " ३१५६ श्री जगन्नाथ प्रसाद उ० १६१
" " ४०७ " ३४१६ श्री रघुनन्दन प्रसाद शास्त्री द्वि ३६०
" " ४४० " ३४४६ श्री वाचस्पति शास्त्री उ० १६८
मध्यमा क्र० सं० १२६८ विशारद संख्या १६६८२ श्री जुड़ावन प्रसाद उ०(वि० प्र०

भूल सुधार

२००२ के परीक्षाफल पृष्ठ ४२ श्री द्वारिकेशलाल का नाम भूल से छप गया है। यह अनुत्तीर्ण है। इनके स्थान पर श्री जोधराज आर्य क्र० सं० १२-४६ मध्यमा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हैं।

महावीर प्रसाद श्रीवास्तव
बी० एस-सी० एल० टी०,
विशारद
रजिस्ट्रार

पुस्तकालय
113053
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
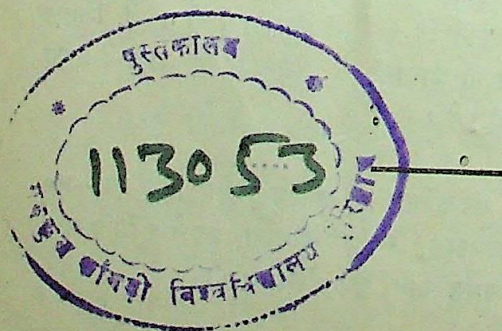
मत्स्य महापुराण

अनुवादक रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

वेदों के बाद पुराण हमारी संस्कृति के गौरव प्रतीक हैं। उनमें ऐसे रत्न छिपे हुए हैं, जिनकी उपेक्षा पाश्चात्य विद्वानों से भी करते नहीं बन पड़ी। पुराणों में वर्णित भारतीय समाज की सब से पुरानी कहानियों की महत्ता इस लिये भी अतुलनीय है कि वह मनोरंजक होने के साथ-साथ जीवनदायिनी अनुभूतियों से ओतप्रोत, सरल, आडम्बर हीन, सुरुचिपूर्ण और उपदेशप्रद हैं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी उपयोगिता आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है।

मत्स्य महापुराण की प्रशंसा ऐतिहासिक विद्वानों ने भी इसलिए की है कि अन्य पुराणों की भाँति इसमें किसी सम्प्रदाय विशेष की प्रशंसा और अन्य की निन्दा नहीं की गई है और न किसी विशेष सम्प्रदाय के हाथ में पड़ कर यह प्रचार का साधन ही बना है। इसमें मूर्ति कला, चित्र कला, राजनीति कूटनीति, वास्तु विज्ञान, आयुर्विज्ञान ज्योतिष आदि कला एवं वैज्ञानिक विषयों का भी सन्निवेश है। अनुवाद प्रामाणिक और प्रवाहपूर्ण है। साधारण पढ़े लिखे लोग भी इस से मूल ग्रन्थ का आनन्द उठा सकते हैं। पुस्तक प्रायः ८०० डबल क्राउन अठपेजी साइज में समाप्त हुई है।

अगले मास में पाठकों की सेवा में इसे प्रस्तुत कर सकेंगे।

जातक

[प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय खण्ड]

अनुवादक : भदन्त आनन्द कौसल्यायन

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जयचन्द्र विद्यालंकार का कथन है कि "विश्व के वाङ्मय में 'जातक' जन-साधारण की सब से पुरानी कहानियाँ हैं; मनोरंजकता, सुरुचि, सरलता, आडम्बरहीन सौन्दर्य और शिक्षाप्रद होने में उनका मुकाबिला नहीं हो सकता। ये बच्चों के लिये सरल और आकर्षक, जवानों और बूढ़ों के लिये भी रुचिकर और विद्वानों के लिये प्राचीन भारत के जीवन का जीता-जागता चित्रण करने के कारण अत्यन्त मूल्यवान हैं।"

प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या ५४०, डिमाई साइज; सजिल्द मूल्य ७॥)
द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या ४६४, डिमाई साइज; सजिल्द मूल्य ७॥)
तृतीय खंड, पृष्ठ संख्या ४४८, डिमाई साइज; सुन्दर जिल्द मूल्य १०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० ए० ६२९

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्

१ काव्य कलानिधि	३॥)	१ चित्र रेखा		
२ भारत-गीत	≡)	२ बाल नाटक-माला		
३ राष्ट्रभाषा	।)	३ बाल-कथा भाग २		
४ मैथिली लोकगीत	४)	४ बाल विभूति		
५ पद्मावत पूर्वार्द्ध	१), १।)	५ वीर पुत्रियाँ		
६ स्त्री का हृदय	१॥)	६ तुलसी दर्शन		
७ नवीन पद्यसंग्रह	१)	७ सरल नागरिक शास्त्र		
८ बिहारी-संग्रह	≡)	८ कृषि प्रवेशिका		
९ सती करुणाकी	॥)	९ विकास (नाटक)		॥
१० हिन्दी पर फारसी का प्रभाव	॥≈)	१० हिंदू-राज्य शास्त्र		
११ ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार	१।)	११ कौटिल्य की शासन-पद्धति		१≈
१२ समाचार पत्र शब्दकोष	१॥)	१२ गावों की समस्यायें		१
१३ अकबर की राज्यव्यवस्था	३)	१३ मीराँबाई की पदावली		
१४ रसखान और उनका काव्य	॥)	१४ भट्ट निबंधावली	१)	१॥
१५ देव शब्द रसायन	२॥)	१५ बंगला-साहित्य की कथा		१।
१६ सरल शरीर-विज्ञान	॥) १॥)	१६ शिशुपाल वध		२॥
१७ प्रारम्भिक रसायन	१)	१७ ऐतिहासिक कथायें		॥
१८ सृष्टि की कथा	१॥)	१८ दमयन्ती स्वयंवर		

नवीन पुस्तकें

१—गोरखबानी—स्व० डाक्टर पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल	३)
२—महावंश—भदन्त आनन्द कौसल्यायन	४)
३—भोजपुरी लोकगीत में करुणरस—श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह	५)
४—राजस्थानी लोकगीत—स्व० सूर्यकरण पारीक	१॥)
५—सामान्य भाषाविज्ञान—डा० बाबूराम सक्सेना	६)
६—काव्यप्रकाश—मम्मटाचार्य, अनुवादक स्व० हरिमंगल मिश्र	६)
७ कैलास और मानसरोवर—स्वामी प्रणवानन्द	१०)
८ भोजपुरी ग्राम गीत—श्री कृष्णदेव उपाध्याय	५)
९ अनुराग बाँसुरी—श्री श्री चन्द्रबली पाण्डेय एम० ए०	१।)
१० विचार विमर्श (निबंध-संग्रह) श्री चन्द्रबली पाण्डेय	२)
११ बाल इतिहास भाग १ तथा २ श्री—भगवतशरण उपाध्याय	१) १॥)

प्रकाशक—श्रीरामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।
मुद्रक : श्रीगिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar